The Drenched Book

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182365

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP -24 -4-1-69--5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 R25P Accession No. 2.G. H2853

Author रवीन्द्र श्रमर

Title पद्मावत [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below

पद्मावत में लोकतत्व

पद्मावत में लोकतत्व

लेखक

डा० रवीन्द्र 'भ्रमर'

(अलीगढ़ विश्वविद्यालय)

संपादक

श्रीकृष्ण दास

मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

प्रकाशक :
मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद ।

मूल्य
पाँच रुपये
१९६२

मुद्रक :
वीरेन्द्रनाथ घोष,
माया प्रेस प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद ।

भूमिका

मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य की अनुपम रचना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० माता प्रसाद गुप्त, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों ने इस महान् कृति का अध्ययन-अनुशीलन एवं मूल्यांकन अनेक दृष्टियों से किया। इन विद्वानों की देख-रेख में अन्य सुयोग्य शोधकों ने भी 'पद्मावत' का गम्भीर अध्ययन और शोध किया और उसके विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला। डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' कृत 'पद्मावत में लोकतत्व' इस क्रम में रचित महत्वपूर्ण शोध ग्रन्थ है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में ही इस शोध-प्रबन्ध की रचना हुई थी। इस शोध-प्रबन्ध को प्रकाश में अब इस लिये लाया जा रहा है कि 'पद्मावत' के प्रेमी पाठकों एवं अध्येताओं तथा छात्रों को 'पद्मावत' के अध्ययन-अनुशीलन में एक नई दृष्टि मिले और वे एक नये कोण से इस महान् रचना का मूल्याकन कर सकें।

पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में लोकवार्ता को विश्वविद्यालयों में महत्वपूर्ण विषय के रूप में जो मान्यता मिली और जिस प्रकार वैज्ञानिक प्रणाली एवं आधार पर इस विषय का अनुशीलन किया गया उससे सब लोग भली भांति परिचित हैं। प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी साहित्य के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का, रचनाकारों का और उनकी अस्फुट कृतियों का भी अध्ययन अनुशीलन इस दृष्टि से हो रहा है। हम समझते हैं कि इससे हिन्दी साहित्य के प्रति हमारी दृष्टि में व्यापकता तो आ ही

रही है, हम रचनाकारों एवं रचयिताओं के प्रति अधिकाधिक मात्रा में न्याय भी कर पा रहे हैं।

'पद्मावत' का आध्यात्मिक पक्ष, 'पद्मावत' की भाषा, 'पद्मावत' की रचना शैली तथा उसकी इस प्रकार की अन्य विशेषताओं पर अनेक विद्वान् पहिले ही सम्यक् प्रकाश डाल चुके हैं। डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' ने प्रस्तुत पुस्तक में 'पद्मावत' के लोकतात्विक स्वरूप का गम्भीर विश्लेषण किया है और उसके लोकतात्विक आधारों, स्रोतों एवं प्रेरणाओं का अत्यन्त सहज एवं सरल रूप में अध्ययन प्रस्तुत किया है और इस बात की स्थापना की है कि मलिक मुहम्मद जायसी सत्यमेव लोक-कवि थे, लोक-संग्रही कवि। शास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर 'पद्मावत' का जो अनुशीलन हुआ उससे उसकी महत्ता एवं उत्कृष्टता पर तो प्रकाश पड़ा ही, परन्तु 'पद्मावत' में निहित लोक-तत्वों का जो विवेचनात्मक विश्लेषण इस प्रबन्ध में किया गया है उससे 'पद्मावत' के उस पक्ष पर प्रकाश पड़ा है जिसे हम 'लोक-पक्ष' कह सकते हैं। 'पद्मावत' में पग-पग पर, पंक्ति-पंक्ति में अवध का लोक जीवन अपनी समस्त विविधताओं एवं विशेषताओं के साथ मुखर हो उठा है, उद्भासित हो उठा है! उस जीवन में एक रंगीनी है, एक सशक्तता है, एक प्राणवत्ता है, एक ओज है जो 'पद्मावत' को भी शोभा सम्पन्न करने, चारुता प्रदान करने में सफल हुआ है। डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' ने 'पद्मावत' के इन्हीं तत्वों को उभार कर सामने रखा है।

हमें आशा है कि डा० रवीन्द्र 'भ्रमर' की इस सफल रचना से विद्वानों को संतोष होगा और 'पद्मावत' के अध्येताओं को नयी दृष्टि एवं प्रेरणा मिलेगी।

—श्रीकृष्ण दास

दो शब्द

१९५४ ई० में, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एम० ए० द्वितीय वर्ष (हिन्दी) की परीक्षा के लिये, मैंने जब अन्तिम दो प्रश्न पत्रों के स्थान पर एक विशिष्ट निबन्ध प्रस्तुत करने का संकल्प लिया तो मेरे बड़े भाई डॉ० नामवर सिंह ने विषय के चुनाव में मेरी सहायता की। हमारा आग्रह विषयगत नवीनता तथा महत्व के प्रति था। अस्तु, लोकवार्त्ता (फ़ोक-लोर) की दृष्टि से जायसी कृत 'पद्मावत' का अध्ययन मेरे लिये निश्चित हुआ। गुरूवर आचार्य पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने विषय की रूपरेखा बनाई तथा निर्देशन भी किया। प्रस्तुत कृति का यही संक्षिप्त इतिहास है।

कालान्तर में, लोकवार्त्ता तथा अभिजात साहित्य की तुलनात्मक विवेचना की दृष्टि से, मैंने हिन्दी के भक्ति-साहित्य को पी० एच० डी० की उपाधि के लिये शोध का विषय बनाया और तय यह हुआ कि इस शोध-कार्य की परिसमाप्ति से पूर्व प्रस्तुत कृति को प्रकाशित न किया जाय।

अब, यह पुस्तक रूप में प्रकाशित है। लोकवार्त्ता तथा लोक-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् श्रद्धेय श्री श्रीकृष्ण दास जी ने भूमिका लिख कर इसके महत्व तथा मूल्य को बढ़ा दिया है। दास बाबू के सुझाव एवं संकेत के अनुसार, पुस्तक के अन्त में कतिपय अन्य महत्वपूर्ण प्रेमाख्यानकों के लोकतात्विक स्वरूप पर भी थोड़ा विचार कर लिया गया

है। इससे, सूफ़ी साहित्य प्रेमियों के लिये पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है।

मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड (इलाहाबाद) ने इस कृति को प्रकाशित करके मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया है, साथ ही उन पाठकों का उपकार भी जो इसे पढ़ेंगे।

धन्यवाद मैं किसी को नहीं दूँगा। सभी मेरे गुरुजन और हितैषी हैं। अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा याचना सहित, सबके प्रति नत-मस्तक हूँ।

होलिकोत्सव १९६२
संस्कृत-हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय

—रवीन्द्र 'भ्रमर'

विषयानुक्रम

पहला अध्याय : भूमिका पृष्ठ १–३४

(१) विषय और उसकी सीमा १९–२०
(२) लोकतत्व और लोक उपादान २०–२७
(३) लोक-साहित्य और अभिजात साहित्य २७–३४
(४) लोकतत्व साहित्य के उपादान स्वरूप ३४–३६
(५) सूफ़ी और उनका काव्य ३६–४६
सूफ़ी सन्त और भक्ति आन्दोलन
सूफ़ी और इस्लाम प्रचार
सूफ़ी और उनके सम्प्रदाय
सूफ़ी शब्द का अर्थ
सूफ़ी और इस्लाम मत
प्रेम भाव की साधना
सूफ़ी मत पर भारतीय प्रभाव
सूफ़ियों के तीन वर्ग

पृ० संख्या

हिन्दी के सूफ़ी काव्यों की सामान्य लौकिक विशेषतायें– ४८–५८

(क) स्रोत, (ख) प्रेमाख्यान, (ग) प्रेमाख्यानकों की परम्परा, (घ) काव्य रूप, (ङ) भाषा, (च) छन्द, (छ) उपमान, (ज) आचार विचार।

दूसरा अध्याय : कथा-पक्ष ५७–१०७

(१) लोकाख्यानक काव्य की परम्परा ६१–६२
(२) पद्मावत कथा और इतिहास ६२–६४
(३) कहानी का लोकप्रिय रूप ६४
(४) पद्मावतकार द्वारा कहानी के लोकरूप की स्वीकृति ६५–६६
(५) कथानक का तुलनात्मक विवेचन ६७–७४

(अ) पद्मावत की कथा

(ब) पद्मावत कथा की तुलना : कुछ अन्य कहानियों से
(क) रासो का 'पद्मावती' समय और 'पद्मावत'
(ख) ढोला मारू की कथा और पद्मावत
(ग) एक लोक कहानी और पद्मावत

(६) सम्पूर्ण कथानक का रूढ़ रूप ७५
(७) कथानक के प्रमुख उपादान ७६–७७
(८) कथानक रूढ़ियाँ ७८–८३
(९) पद्मावत की कथानक रूढ़ियाँ ८३–१०७
सिंहलदीप, हीरामन शुक, रूप श्रवण, भावी सौत की चिन्ता, जोगी रूप, पूर्व निश्चित स्थान, शिव मन्दिर, गौरा पार्वती और महादेव, संदेश-वाहक पक्षी, नौका दुर्घटना।

पृ० संख्या

तीसरा अध्याय : कला-पक्ष १०६–१५६

कला-पक्ष

(१) भाषा विवेचन ११२–१२७

विद्वानों के मत

स्थानीय बोली

'मानस' और 'पद्मावत' की भाषा में अन्तर

समर्थ भाषा

भाषा की एक-रूपता

बोलचाल की अवधी की कतिपय विशेषताएँ

अवधी का रूप

(१) अकारान्त शब्द, (२) तद्भव शब्द,

(३) उच्चारण, (४) कारक लोप (५) क्रिया

रूप (६) ठेठ शब्द (७) मुहावरे और लोकोक्तियाँ

(२) शैली का लोक-रूप १२७–१३५

(१) कहानी कहने का ढंग

(क) कुतूहल की पूर्ति, (ख) उपदेशात्मक प्रवृत्ति

(२) व्यंजना का सारल्य

सीधी-सादी उक्तियाँ

वार्ता शैली

(३) छन्द योजना– १३५–१४४

दोहा चौपाई

मात्रिक छन्द

परम्परा

दोहा : अपभ्रंश साहित्य का प्रतीक

पृ० संख्या

चौपाई और अरिल्ल छन्द
दोहे और चौपाई की उत्पत्ति का
मूल स्रोत : लोक कण्ठ
(४) अलंकार योजना– १४४–१५६
(१) नखशिख के उपमान–
अधिकांश रूढ़ उपमान
कुछ मौलिक उपमान
(२) अन्य प्रकार के उपमान–
भाव वर्णन के उपमान–
वस्तु वर्णन के उपमान–

चौथा अध्याय : प्रकृति चित्रण का लोक रूप १५७–१७६

(१) काव्य और प्रकृति १५९
(२) हिन्दी साहित्य और प्रकृति १५९
(३) पद्मावत में प्रकृति १६०
(४) हिन्दी साहित्य में प्रकृति के रूप १६०–१६१
आलम्बन
उद्दीपन
अलंकरण
विषय की दृष्टि से इनके दो वर्ग–
परम्पराबद्ध प्रकृति चित्रण
उन्मुक्त और स्वच्छन्द प्रकृति चित्रण
(५) आलम्बन रूप १६१–१६४
(६) उद्दीपन रूप १६५–१६७
(७) उपमान रूप १६८–१६९

पृ० संख्या

(८) षट् ऋतु और बारहमासा वर्णन— १७०–१७६
(अ) बारहमासा
(आ) बारहमासे का लोक रूप
(इ) षट् ऋतु वर्णन

पाँचवाँ अध्याय : लोक जीवन के शेष पहलू १७७

लोक-पक्ष

(१) लोक कृत्य— १८०–१९०
विवाह
भोज
युद्ध

(२) लोकोत्सव— १९०
बसन्त
होली
दीवाली

(३) लोक प्रथाएँ—
गौना प्रथा
सती प्रथा
जौहर प्रथा
चौपड़ का खेल

(४) लोक विश्वास—
शकुन-अपशकुन
यात्रा विचार
देवी-देवता और राक्षस

पृ० संख्या

छठवाँ अध्याय : अन्य प्रेमाख्यानक

अन्य प्रेमाख्यानक
चंदायन २१२
मृगावती २१६
मधुमालती २१८
भाषा, शैली और छन्द २२२
लोक जीवन २२७

उपसंहार

परिशिष्ट

लोकोक्तियों की सूची २४३
मुहावरों की सूची २४७
सहायक ग्रन्थों की सूची २४६
पत्रिकायें २५१
अंग्रेज़ी के सहायक ग्रन्थ २५२

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

(१) विषय और उसकी सीमा
(२) लोक तत्व : लोक उपादान
(३) सफी कवि और उनका काव्य

(१) विषय और उसकी सीमा

'पद्मावत' मलिक मुहम्मद जायसी कृत अवधी भाषा का एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। हिन्दी साहित्य की प्रेमाख्यानक काव्य-परम्परा के अन्तर्गत लिखित काव्यों में यह ग्रंथ बेजोड़ है। 'पद्मावत' के बाद अवधी भाषा की दूसरी सर्वश्रेष्ठ कृति है—गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरित मानस' जो लगभग एक शताब्दी बाद की रचना है। अवधी के ये दोनों ग्रंथ दो भिन्न प्रकार की चिन्ता-धाराओं के प्रतीक हैं। एक में सूफ़ी सिद्धान्तों का सहारा लेकर प्रेम-भक्ति की कहानी कही गई है तो दूसरे में भारतीय सगुण-भक्ति की धारा शत सहस्र शाखाओं में फूटकर बही है और मर्यादा एवं आदर्श की अमर गाथा का आकर बन गई है। एक में लोक-कथाओं के लौकिक प्रेम द्वारा पारलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की गई है और निराकार प्रेम-प्रभु की आरती उतारी गई है, तो दूसरे में नानापुराण निगमागमों के आधार पर निर्गुण-निराकार ब्रह्म को सगुण साकार रूप में अवतरित किया गया है। अपने इन्हीं मूलभूत सैद्धान्तिक अन्तरों के कारण ये दोनों रचनाएँ दो भिन्न प्रकार की रचना-कोटि के अन्तर्गत आती हैं। 'मानस' शास्त्रोन्मुख (क्लैसिकल) अधिक है। वस्तु-संगठन, रचना-कौशल, भाषा, शैली और छन्द आदि सभी दृष्टियों से मानसकार ने शास्त्रीय काव्य-पद्धति का अनुसरण किया है। इसके ठीक विपरीत 'पद्मावत' लोकोन्मुख है। उसकी कहानी का रूप, रचना-शैली, भाषा और छन्द आदि

लौकिक अधिक हैं, शास्त्रीय कम। प्रस्तुत अध्ययन 'पद्मावत' के इसी लोकरूप से सम्बद्ध है।

मध्यकालीन धर्म साधना में सूफ़ी सन्तों का एक विशिष्ट स्थान है। भक्ति युग में, ज्ञानाश्रयी निर्गुण मार्गी और सगुण मार्गी भक्तों के स्वर से भिन्न, इन सूफ़ी सन्तों ने अपनी कान्ता-रति या मधुर-भाव की उपासना पद्धति का अनन्य आदर्श उपस्थित किया। मुस्लिम शासन का आरम्भ होने से पूर्व ही ये सूफ़ी साधक इस देश में आने लगे थे। इनके यहाँ आने का और चाहे जो भी लक्ष्य रहा हो, परन्तु इनका एक प्रधान उद्देश्य सूफ़ी मत और सूफ़ी सिद्धान्तों का प्रचार भी था। अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये इनमें से अधिकांश सन्तों ने काव्य-रचना को अपना माध्यम बनाया। ये लोग भारतीय काव्य-शास्त्र के सिद्धान्तों से विशेष परिचित न थे और न इन्होंने कभी इनके अध्ययन का प्रयत्न ही किया। ये अपनी स्वाभाविक मस्ती में जो कुछ गाते थे वही इनका काव्य हो जाता था। इन सन्तों को अपने प्रचार कार्य के कारण इस देश के लोक जीवन के निकटतम सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। ये भारतीय मनीषियों और सन्तों के भी सम्पर्क में आये थे और उनसे प्रभावित हुए थे। इस प्रकार भारतीय सूफ़ियों की साधना कई प्रकार की विचार-धाराओं का संगम बन गई थी। फ़ारस के सूफ़ी साधकों की अनेक प्रकार की परम्पराएँ ये अपने साथ लाये थे। इस देश में आने पर ये मूलतः जनता के आदमी बन गये थे और यहाँ की लोक-संस्कृति की अनेक रीतियों, परम्पराओं और लौकिक अनुष्ठानों से परिचित हो गये थे। भारतीय सन्तों और मनीषियों के सम्पर्क ने इन्हें भारतीय शास्त्रों से भी थोड़ा बहुत परिचित करा दिया था। इसलिये इस देश में लिखे गये सूफ़ी काव्यों में इन सभी परम्पराओं के विभिन्न उपादानों को ढूँढा जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन केवल 'पद्मावत' से सम्बन्धित है और उसमें भी केवल लोक-वार्त्ता (फ़ोक-लोर) के विभिन्न तत्वों का ही विवेचन किया गया है।

'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का एक उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य माना जाता है। कहा जाता है कि इसमें सूफ़ियों की मसनवी शैली और भारतीय काव्यों की प्रबन्ध शैली दोनों ही का सम्मिश्रण है। इनके अतिरिक्त इसमें लोक-कथाओं और लोक-गीतों की शैली तथा लोक जीवन एवं लोक-साहित्य के विभिन्न उपादानों का भी पर्याप्त समावेश हुआ है। इसकी कहानी लोक-जीवन की कहानी है। भाषा, भाव, छन्द और उपमान आदि की दृष्टि से भी इस पर लोक की गहरी छाप है। किन्तु क्या कुल मिलाकर यह काव्य किसी लोक-काव्य की रूपरेखा से मिलता जुलता है? क्या यह लोकाख्यानों और लोकवार्ताओं पर आधारित है? यदि हाँ, तो इसकी निर्मिति में किन-किन लोक-उपादानों का कितना योग है? ये लोक-उपादान क्या अन्य अभिजात साहित्यिक ग्रंथों में भी समाविष्ट हुए हैं? अन्य ग्रंथों में प्राप्त लोक-उपादानों और 'पद्मावत' के लोक-उपादानों में क्या साम्य और क्या अन्तर है? अपने सम्पूर्ण रूप में इस ग्रंथ में लोक-काव्य अधिक है या शास्त्रीय काव्य? ऐसे कितने ही प्रश्नवाचक चिन्ह प्रस्तुत ग्रंथ की सर्जना के मूलाधार हैं। आगामी पृष्ठों में यथास्थान इनका उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है।

विवेच्य विषय पर एकदम सीधे न आकर, पहले लोक उपादानों का एक संक्षिप्त परिचय दिया गया है। लोक-उपादान क्या है? लोक-जीवन, लोकवार्ता और लोक-साहित्य से इनका क्या सम्बन्ध है? लोक-वार्ता और लोक-जीवन के ये तात्विक उपादान किस प्रकार 'अभिजात साहित्य' (क्लैसिकल लिटरेचर) की रचना में परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से योग प्रदान करते हैं? लोक-साहित्य और अभिजात साहित्य में परस्पर क्या सम्बन्ध है? ये ही कुछ बातें हैं जिन्हें विषय-विवेचन से पूर्व स्पष्ट कर लेना अनिवार्य समझा गया है। इसके साथ-साथ सूफ़ी सन्त, सूफ़ी मत और सूफ़ी काव्यों पर भी एक विहंगम-दृष्टि डाली गई है, क्योंकि 'पद्मावत' सूफ़ी काव्य पहले है और लोक काव्य या और कुछ बाद

में। ये बातें विवेच्य विषय से थोड़ा दूर की वस्तु तो हैं, किन्तु इन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। ये विषय की गहराई में पहुँचने की सीढ़ियाँ हैं।

अब तक 'पद्मावत' के कई सम्पादक हुए हैं—

(१) जार्ज ग्रियर्सन और पंडित सुधाकर द्विवेदी	(संपादक)	१९११ ई०	१-२५ खंड तक।
(२) लाला भगवानदीन	,,	१९२५ ई०	१-३३ खंड तक।
(३) डाक्टर सूर्यकान्त शास्त्री	,,	१९३४ ई०	१-२५ खंड तक।
(४) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	,,	१९३५ ई०	जायसी ग्रंथावली।
(५) बाबू श्यामसुन्दर दास	,,	१९३६ ई०	संक्षिप्त पद्मावत।
(६) डाक्टर माताप्रसाद गुप्त	,,	१९५३ ई०	जायसी ग्रंथावली।

इन सभी प्रतियों में डाक्टर माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित प्रति सबसे अधिक वैज्ञानिक है। उसका पाठ भी अपेक्षाकृत शुद्ध है। किन्तु, इस ग्रंथ में उद्धरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित जायसी ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पंचम संस्करण) से ही दिये गये हैं।

(२) लोक-तत्व और लोक-उपादान

प्रत्येक देश की अपनी एक लोक-संस्कृति होती है। उसकी भौगोलिक सीमा में बिखरा हुआ विशाल जन-जीवन इस संस्कृति का निर्माता होता है। जब हम थोड़े से शिक्षित और सभ्य कहे जाने वाले लोगों या उनके समुदायों में इस संस्कृति का दर्शन करना चाहते हैं तो असफल ही रह जाते हैं। ऐसे लोग स्वयं तो सुसभ्य और सुसंस्कृत होते हैं किन्तु सारे देश की संस्कृति के निर्माण में इनका स्थान नगण्य होता है। देश की असभ्य और असंस्कृत समझी जाने वाली जनता की तुलना में इनकी संख्या भी बहुत अल्प होती है। किसी भी देश की संस्कृति जिसे लोक-संस्कृति कहते हैं—उन असभ्य और अशिक्षित समझे जाने

वाले मनुष्यों के प्राणों का स्पन्दन होती है जो वहाँ की जनसंख्या का विशाल अंग होते हैं। इन्हीं तथा कथित अशिक्षितों और असभ्यों के सामाजिक जीवन के विविध पहलू, सामूहिक और पारिवारिक जीवन के बहुरंगी चित्र, अपनी अटूट परम्परा के कारण उन तत्वों का रूप धारण कर लेते हैं जिन्हें लोक-तत्व कहा जाता है और जिनके योग से लोक-संस्कृति का निर्माण होता है।

हिन्दी में लोक-तत्वों के लिये एक शब्द 'लोकवार्ता' चल पड़ा है। यह शब्द अंग्रेज़ी के 'फ़ोक-लोर' से बहुत कुछ मिलता जुलता है, किन्तु पर्यायवाची नहीं। इसे हिन्दी में प्रचलित करने का श्रेय श्री कृष्णानन्द गुप्त को है। उनके सम्पादकत्व में कुछ दिनों तक 'लोकवार्ता' शीर्षक एक पत्रिका प्रकाशित होती रही और उसी बीच हिन्दी जगत लोकवार्ता के अर्थ और सीमा विस्तार से परिचित हो गया है। लोक-वार्ता की सीमा अंग्रेज़ी के 'फ़ोक लोर' से विस्तृत है। अंग्रेज़ी विद्वानों ने इस 'फ़ोक लोर' शब्द की व्याख्या अनेक प्रकार से की है। सबसे पहले सन् १८४६ ई० में इस शब्द को जन्म देने वाले श्री डब्ल्यू० जे० थामस ने इसकी व्याख्या निम्नलिखित शब्दों में की--"सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं और रीति-रिवाज़ों का परम्परागत ज्ञान।"[1]

धीरे-धीरे इस शब्द का प्रयोग बढ़ा और इसका अर्थ भी विकसित होता गया। इसकी सीमा में सामान्य लोकजीवन के सौन्दर्यबोध से सम्बन्धित सभी प्रकार की अभिव्यक्तियों की मौखिक और लिखित परम्पराओं का समावेश हुआ। मनुष्य समुदाय के अनेक प्रकार के विश्वासों

---

1. ".....traditional learning of the uncultured classes of civilized nations."
—Encyclopedia Britanica. Vol. X. 'Folk-Lore.'

को स्थान दिया गया और फिर इसकी विस्तृत परिधि में लोक-गीतों, लोक-कथाओं और लोकोक्तियों आदि को भी स्थान मिल गया।[1]

इस प्रकार 'फ़ोक-लोर' के अर्थ की सीमा प्रथाओं, रीति-रिवाजों और अंध-विश्वासों से बढ़कर लोक-गीतों, लोक-कथाओं और अन्य लोक-कलाओं तक जा पहुँची। यहाँ तक कि 'फ़ोक-लोर' और सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र लगभग एक सा समझा जाने लगा। आगे चल कर 'फ़ोक-लोर' की उपयोगिता मनुष्य जाति के सामाजिक इतिहास के अध्ययन में स्वीकार कर ली गई और आवश्यक समझी जाने लगी।[2]

श्री सी० एस० बर्न महोदया ने 'लोकवार्ता' (फ़ोक-लोर) का स्पष्ट विवेचन करते हुए उसके क्षेत्र को बहुत विस्तृत बताया है—यह एक जाति बोधक शब्द की तरह चल निकला जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा उन्नत जातियों द्वारा उपेक्षित और असंस्कृत

---

1. "The term is normaly confined to the spoken or written traditions of people, to traditional aesthetic expressions. Even within this definition folk-lore approaches anthropology at many points, both in subject matter and in method..... there would seem to be no disagreement about its use to include all kinds of folk-songs, folk-tales, superstitions, local legends, proverbs and riddles,"
—Dictionary of World Literature, pp. 242-48

2. "Folk-lore... ..the study of antiquities or archaeology and embracing everything that is related to ancient observances and customs, to nations, beliefs, tradtions, superstitions and prejudices of the common people..... social history of mankind"—Chamber's Encyclopedia, Vol. X, p. 708.

समुदायों के अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कथायें, गीत तथा लोकोक्तियाँ आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में, मानव स्वभाव तथा मनुष्य कृत पदार्थों के सम्बन्ध में, भूत प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में, जादू टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज़, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य लोगों के विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। इसके अतिरिक्त विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध, आखेट, मछली व्यवसाय, पशुपालन आदि विषयों के रीति-रिवाज़ और अनुष्ठान भी इसमें आते हैं। धर्म-कथायें, उपाख्यान, लोक-कथायें, वीरगीत, गीत, किम्बदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में है।[1]

डाक्टर सत्येन्द्र ने अपने एक 'लोकवार्ता और लोकगीत' शीर्षक निबन्ध में बर्न महोदया के आधार पर लोकवार्ता का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया है—

(१) वे विश्वास और आचरण जो सम्बन्धित हैं—१–पृथ्वी और आकाश से, २–वनस्पति जगत से, ३–पशु जगत से, ४–मानव से, ५–मनुष्य निर्मित वस्तुओं से, ६–आत्मा तथा दूसरे जीवन से, ७–देवी देवताओं से, ८–शकुनों, अपशकुनों, भविष्य-वाणियों, आकाश वाणियों से, ९–जादू टोनों से, १०–रोगों तथा स्थानों की कला से।

(२) रीति-रिवाज—१–सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थायें, २–व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, ३–व्यवसाय और उद्योग धन्धे, ४–तिथियाँ, व्रत, त्योहार, ५–खेलकूद, मनोरंजन।

---

१. सी० एस० बर्न–The Handbook of Folk-lore. १९१४, द्वितीय संस्करण, पृ० ४, के आधार पर डाक्टर सत्येन्द्र द्वारा अनूदित।

(३) कहानियाँ, गीत तथा कहावतें—१–कहानियाँ (अ) जो सच्ची समझकर कही जाती हैं, (आ) और जो मनोरंजन के लिये कही जाती हैं; २–गीत सभी प्रकार के (लोक-गीत), ३–कहावतें तथा पहेलियाँ, ४–पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'लोकवार्ता' मनुष्य के आदिम विश्वासों और अनुभूतियों की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है। उसकी यह अभिव्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हुई है। दर्शन, धर्म, विज्ञान, सामाजिक तथा पारिवारिक अनुष्ठान, ऐतिहासिक गाथायें, लोक काव्य और लोक-साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में उसने अपनी मनोवैज्ञानिक विचारधारा को जीवित रूप दिया है।

उदाहरण के लिये हम यहाँ कुछ भारतीय लोकवार्ताओं को ले सकते हैं। पहले विश्वास और आचरण सम्बन्धी दो एक तत्वों की ओर उल्लेख किया जाता है—पीपल के वृक्ष पर देवताओं का वास है। कुछ गाँवों के पुराने पीपलों पर भूत-प्रेत भी रहते हैं। ये भूत-प्रेत कई प्रकार के होते हैं। इनमें से कुछ तो मरे हुए लोगों की आत्माओं के प्रेत-प्रतीक होते हैं और कुछ अप्राकृतिक सत्ताओं (सुपरनेचुरल-एलिमेंट्स) के प्रतिनिधि। कभी-कभी पर्वतों, जंगलों और रात्रि के अन्धकार का भय भी इन प्रेतों का आकार ग्रहण कर लेता है।[2] न

---

१. डाक्टर सत्येन्द्र–ब्रजलोक संस्कृति–'लोकवार्ता और लोकगीत' शीर्षक निबन्ध से।

2. "Some of these demons are the malignants of the dead while others seems to be impersonations of the power of Nature, the awe and mystery of the mountains and forests, or of night and its terrors."
—W. Crooke : Religion and Folklore of Northern India, p, p. 203.

जाने कितने दिनों से गाँव की भोली-भाली जनता इन देवों, दैत्यों और प्रेतों का दर्शन करती आई है। उसने इन सत्ताओं को प्रत्यक्ष रूप से कभी नहीं देखा है, किन्तु उसका विश्वास ज्यों का त्यों है। इसीलिये इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट निवारण के लिये पीपल की पूजा की जाती है। उसकी डालें कोई नहीं काटता। एक रीति-रिवाज सम्बन्धी उदाहरण इस प्रकार है--कुछ पूर्वी जिलों में दीवाली के तीसरे दिन एक व्रत रहा जाता है जिसे 'भइया दूइज' कहते हैं और जो स्त्रियों का एक प्रमुख त्योहार है। इस दिन स्त्रियाँ सामूहिक रूप से एकत्रित होकर अपने भाइयों को जी भर कर गालियाँ देती हैं, कुछ पुरानी कहानियाँ कहती हैं, जो भाई बहन के जीवन से सम्बन्धित होती हैं। अन्त में वे गोवर्धन पूजन करती हैं और भाई को गाली देने के पश्चाताप स्वरूप अपनी जीभ जलती बत्ती से दागती हैं। इस व्रत का उद्देश्य है--भाई के चिरायु होने की कामना। न जाने कितने समय से स्त्रियों में 'भइया-दूइज' व्रत की यह प्रथा चली आ रही है। इससे भाई की आयु सचमुच बढ़ती है कि नहीं, यह प्रश्न उनके सामने कभी नहीं उठता। उनका विश्वास इस परम्परा को आगे बढ़ाता जा रहा है। लोकवार्ता की सीमा में गीत, कहानियाँ और कहावतें आदि भी आती हैं। भारतीय भाषाओं और ग्रामों में ही नहीं विश्व की सभी भाषाओं में ऐसे गीत और कहानियाँ प्रचुर मात्रा में मिल जाती हैं जिन्हें जनता युग-युग से कहती-सुनती आ रही है। भारतीय गाँवों में मिलनेवाली, 'सारंगा सदावृज', 'राजा भोज', 'हीर राँझा', 'ढोला मारू', 'रसालू' और 'राजा विक्रमादित्य' आदि की कहानियाँ और शादी, ब्याह, जन्मोत्सव तथा पर्वोत्सव आदि के अवसर पर गाये जाने वाले गीत लोकवार्ता के अंग हैं।

हमारे इस विशाल देश में न जाने कितनी ऐसी लोकवार्तायें प्रचुर मात्रा में बिखरी पड़ी हैं। इनमें हमारे गाँवों की जन-संस्कृति, साधारण जन जीवन की झाँकी के विविध पहलू और जीवन तथा

जगत के प्रति लोक द्वारा स्थापित की गई विविध मान्यतायें एक साथ साकार हो उठी हैं। भारतीय लोक-गीतों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का यह कथन उल्लेखनीय है–

"जब तक हमें इन लोक-गीतों का पूर्ण ज्ञान और परिचय न हो जाय तब तक, भारतीय जन जीवन की मनोवैज्ञानिक गहराइयों, उसकी रीतियों और प्रथाओं का कोई भी चित्र हमारे मस्तिष्क में पूरी पूरी तरह से नहीं उभर सकता।[1]

इन लोकवार्ताओं के पीछे हिन्दू जीवन की एक परम्परागत पृष्ठभूमि है। ये जनसाधारण की परम्परागत विचारधाराओं और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें जीवन के मानवतावादी मूल्यों का समावेश है और सामान्य मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्तियों का बहिस्पन्दन है।[2] सम्पूर्ण विश्व में इन लोकवार्ताओं का महत्व एक सा है। यदि हम विभिन्न देशों की वार्ताओं का संकलन करें और उनका तुलनात्मक

---

1. "No picture of India can convey more forcibly and clearly to our minds the manners and habits and psychological depths of her inner life than an insight into these songs."
   —Devendra Satyarthi: Modern Review, September 1943.

2. "The folklore of Hindus is nothing but the adaptation of their metaphysical culture-lore to the instincts and aptitudes of the 'man in the street'; or obversely the interpenetration of the grosser systems of thought and activity with conceptions of a higher system of life-values and life-attitudes."
   —B. K. Sarkar: The Folk Element in Hindu Culture: Introduction.

अध्ययन करें तो देखेंगे कि उनके लक्ष्य, निर्माण की पृष्ठभूमि और मनोवैज्ञानिक दर्शन में एक अद्भुत साम्य है। ये लोकवार्तायें केवल अतीत की ही वस्तु नहीं होतीं, इनमें वर्तमान जनजीवन की आत्मा की भी प्राण-प्रतिष्ठा रहती है।[1] इनकी परम्परा का विकास अटूट और चिरन्तन होता है। साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं की स्थापना में इन लोक तत्वों का महत्वपूर्ण योग है।

(३) लोक-साहित्य और अभिजात साहित्य

लोकवार्ता की व्याख्या करते समय हमने देखा है कि लोक-साहित्य इसका एक महत्वपूर्ण अंग होता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः लोक-कथाएँ, लोक-गीत, और लोक-नाट्य या लोक नृत्यों के अवसर पर गाये जाने वाले 'कोरस' गीत आते हैं। इस लोक साहित्य और अभिजात साहित्य में मौलिक भेद है। 'लोक-साहित्य'—जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है—लोक का—साधारण, अशिक्षित जनता का साहित्य होता है। अभिजात साहित्य सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत जनता की कृति होता है। एक में लोक जीवन के विविध चित्र मिलते हैं तो दूसरा सीमित शिष्ट समाज का दर्पण। लोक-साहित्य और अभिजात साहित्य में इन मौलिक भेदों के अतिरिक्त कुछ सैद्धान्तिक अन्तर भी होते हैं। अभिजात साहित्य लिखित होता है। किन्तु लोक-साहित्य किसी ग्रंथ में लिपिबद्ध नहीं होता। वह जनता की विराट अलिखित

---

1. "Folklore is not something far away and long ago but real and living among us."

—American Folklore (Pocket book)—Introduction, p. 15.

पुस्तक पर अंकित रहता है, एवं लोक-कंठ में जीवित रहता है। उसकी एक विशाल मौखिक परम्परा होती है। गीतों, कहावतों और कथाओं का रूप धारण करके यह लोक-साहित्य एक कंठ से दूसरे कंठ एवं एक युग से दूसरे युग तक यात्रा करता रहता है। अपने इसी मौखिक रूप के कारण लोक-साहित्य परिवर्तनीय होता है। जब भी जनता चाहती है वह अपनी सुविधा के अनुसार इन कथाओं और गीतों में उपयुक्त संशोधन कर लिया करती है। इसके विपरीत अभिजात साहित्य अपरिवर्तनीय (रिजिड) समझा जाता है। तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस में जो कुछ लिख दिया, वह लिख दिया। यदि आज का युग चाहे कि वह तुलसीदास के नाम से कोई ऐसा 'मानस' तैयार करे जिसमें गाँधीवादी या साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार हो तो वह असफल सिद्ध होगा। लोक-साहित्य की भाषा अभिजात साहित्य की अपेक्षा अधिक सरल, अधिक सुबोध और व्याकरणिक नियमों से स्वतन्त्र होती है। उसकी भाषा जन-भाषा होती है, साहित्यिक भाषा नहीं। यह दूसरी बात है कि साहित्यिक भाषा के अधिक जटिल और व्याकरणिक नियमों में बँध जाने के कारण लोकभाषा साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण कर ले और धीरे-धीरे पुनः परिनिष्ठित हो जाय, किन्तु जब तक वह लोकभाषा होती है, सरल और सुबोध होती है। लोक-साहित्य शास्त्रीय सिद्धान्तों में जकड़ा नहीं होता। कोई भी लोकगीत ऐसा नहीं मिलेगा जो छन्द शास्त्र और अलंकार शास्त्र का ध्यान रख के सृजित किया गया हो। इसमें एक नैसर्गिक-संतुलन-बोध (सेन्स आफ़ बैलेंस) अवश्य होता है और इनका निर्माता वह जनकंठ होता है जो अपनी मस्ती में गाता है, ढोल बजाता है और झूम-झूम कर नाचता है। लोक-साहित्य और अभिजात साहित्य में एक और प्रमुख अन्तर यह है कि सत्-साहित्य के रचयिता लेखकों और कवियों का नाम ज्ञात होता है किन्तु लोक-साहित्य के रचयिताओं का नाम अज्ञात होता है। ऐसा लोक-गीत कब और किस लेखक द्वारा लिखा गया इसका

हम कुछ भी अन्दाज़ नहीं लगा सकते। लोक साहित्य वस्तुतः सामूहिक जन-चेतना का फल होता है, वह किसी एक व्यक्ति विशेष की कृति नहीं होता। लोकगीतों के गायकों के सम्बन्ध में श्री गिरिजा कुमार माथुर ने एक स्थान पर लिखा है—

"लोकगीतों के आदि गायकों के नाम कदाचित ही कभी सामने आते हैं। इसका कारण केवल इतना ऊपरी ही नहीं कि वह अलिखित या मौखिक रहा है। मूल कारण यह है कि व्यक्ति अपने को समूह में ढाल कर ही वहाँ कुछ कहता है और कह कर समूह की वाणी बनकर समूह में मिल जाता है। अपने ही देश की नहीं लगभग सभी देशों की लोकवार्ता के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है। मुझे यहाँ निग्रो किसान के एक पुराने कथागीत (बैलेड) 'बाल वीविल सांग' का अंतिम चरण याद आ रहा है जिसका आशय यह है—

यदि तुमसे कोई पूछे,
कि यह गीत किसने बनाया।
केवल इतना कहना,
कि वह एक काला किसान था।

दुख के नीले रंग में रंगा,
और उसका कोई घर नहीं था।[1]

लोक-साहित्य और अभिजात-साहित्य का अन्तर समझ लेने के पश्चात् हमारे समाने एक ऐसी कोटि का साहित्य भी आता है जो दोनों के बीच की वस्तु होता है। ऐसे साहित्य की 'स्पिरिट' तो लोक-साहित्य से ली जाती है किन्तु इसका ढांचा शास्त्रीय होता है। यह किसी

---

१. गिरजा कुमार माथुर—'भूमिका'—('बाजत आवे ढोल', लेखक, देवेन्द्र सत्यार्थी) पृ० १८—१९।

विशेष साहित्यिक व्यक्ति का कृतित्व होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस कोटि का साहित्य लोक-साहित्य का ही 'पालिश' किया हुआ रूप होता है। भाषागत और भावगत सतर्कता के कारण यह अपने मूल लौकिक रूप से भिन्न हो जाता है। हमारा विवेच्य ग्रंथ 'पद्मावत' भी इसी कोटि के साहित्य के अन्तर्गत आता है। 'हाल' की 'सतसई' भी इसी कोटि की रचना है। यह प्राकृत साहित्य का एक सरस ग्रंथ है। बाद के संस्कृत साहित्य और हिन्दी साहित्य पर इसका गहरा प्रभाव है। इसमें जिस कोटि की ऐहिकतामूलक सरस रचनायें पाई जाती हैं वह इसके पूर्ववर्ती संस्कृत अथवा अन्य साहित्यों में नहीं मिलतीं। "प्रेम और करुणा के भाव, प्रेमियों की रसमयी क्रीड़ायें, और उनका घात-प्रतिघात इस ग्रंथ में अतिशय जीवित रूप में प्रस्फुटित हुआ है। अहीर और अहीरिनियों की प्रेम-गाथायें, ग्राम-बधूटियों की शृङ्गार चेष्टायें, चक्की पीसती हुई या पौधों को सींचती हुई सुन्दरियों के मर्मस्पर्शी चित्र, विभिन्न ऋतुओं का भावोत्तेजन आदि बातें इतनी जीवित, इतनी सरस और इतनी हृदयस्पर्शी हैं कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट हो जाता है।.....फिर भी यह समझना भूल है कि 'हाल' की 'सतसई' लोक साहित्य है। उसका 'स्पिरिट' नया है पर भाषागत और भावगत वह सर्तकता इसमें भी है जो संस्कृत कविता की जान है। इस नवीनता का सम्बन्ध ज़रूर किसी लोक साहित्य से रहा होगा पर स्वयं यह 'सतसई' लोक साहित्य नहीं थी।"[1] अंगरेजी साहित्य के 'लिटरैरी बैलेड' इसी कोटि के साहित्य के अन्तर्गत आते हैं। वे लोक-गीतों के ढंग पर साहित्यिक कवियों द्वारा लिखे जाते हैं।

हम यहाँ लोक साहित्य के कुछ प्रमुख उप-अंगों पर भी संक्षिप्त

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ११३।

विचार कर लें। लोक साहित्य की विभिन्न शाखाओं और उपशाखाओं को निम्नलिखित प्रकार से अंकित किया जा सकता है—

लोक-साहित्य

गीत	कहानी	वार्ता
१ उत्सवों के गीत	१ व्रत उपवास की कथाएँ	१ बुझौवल
२ ऋतुओं के गीत	२ पौराणिक कथाएँ	२ पहेलियाँ
३ पूजा के गीत	३ वीरों की कथाएँ	३ मुहावरे
४ कथात्मक गीत	४ राजा रानी की कथाएँ	४ लोकोक्तियाँ
५ नाट्य गीत (कोरस)	५ भूत-प्रेत की कहानियाँ	५ गप्पें
६ नृत्यगीत	६ पशु-पक्षियों की कहानियाँ	६ अनुश्रुतियाँ
७ मनोभावाभिव्यंजक—व्यक्तिगत सुख-दुख के गीत	७ उपदेशात्मक कहानियाँ	७ क्रीड़ालाप
	८ विविध मनोरंजन की—कहानियाँ (बच्चों की)	

लोक-गीत

लोक-गीत साहित्यिक गीतों से भिन्न होते हैं। ये चलित और स्मृति साहित्य का रूप धारण करके लोक-कण्ठ में जीते हैं। इन्हें चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) परम्परागत (ट्रैडिश्नल) लोकगीत।
(२) चारणी (मिनिस्ट्रल) लोकगीत।
(३) विकृत (ब्राड साइड) लोकगीत।
(४) साहित्यिक (लिटरेरी) लोकगीत।[1]

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ढोला मारू रा दूहा, पृ० ५५-५६।

इनमें से प्रथम कोटि के गीत ही संपूर्ण रूप से लौकिक होते हैं। विषय, अवसर और विशेष जातियों या समुदायों के नाम पर इनके कई प्रकार होते हैं, जिनका उल्लेख ऊपर की तालिका में किया गया है। हमारे गाँवों में प्रचलित ये नाना प्रकार के गीत अत्यन्त सरस और हृदय के सच्चे उद्‌गार होते हैं। "भाई से विच्छिन्न बहन की करुण कथा; सौत के, ननद के और सास के अकारण निर्दय वाक्य-बाणों से बिद्ध बहू की मर्म कहानी, साहूकार, जमींदार और महाजन के सताये ग़रीबों की करुण पुकार, आन पर कुर्बान हो जाने वाले विस्मृत वीरों की शौर्य-गाथा, अपहार्यमाणा सती का वीरत्वपूर्ण आत्मघात, नई जवानी के प्रेम के प्रतिघात, प्रियतम के मिलन, विरह और मातृप्रेम के अकृत्रिम भाव इन गीतों में भरे पड़े हैं। जन्म से लेकर मरण तक के काल में और सोहाग शयन से लेकर रणक्षेत्र तक फैले हुए विशाल स्थान में सर्वत्र इन गीतों का गमन है। यही हिन्दी भाषा की वास्तविक विभूति है। इसकी एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ, खंडिताएँ और धीराएँ निछावर की जा सकती हैं।"[1]

लोक-नाट्य

लोक-नाट्य बहुधा देवताओं के जीवन से संबंधित होते हैं। जिस प्रकार लोक-कहानियों का विषय राजाओं और राजकुमारों से प्रमुख रूप से संबंधित रहता है वैसे ही ये लोक-नाट्य अधिकांशतः पौराणिक अथवा धार्मिक-गाथाओं के अभिनय होते हैं। इनकी भाषा लोक-भाषा होती है और कथोपकथन गीतों के माध्यम से होता है। ये आदर्शवादी, यथार्थवादी, दुःखान्त, सुखान्त आदि सभी प्रकार के होते हैं। इनका अभिनय मुख्य रूप से ऋतु-उत्सवों और पर्वोत्सवों के अवसर पर किया जाता है। सामूहिक नृत्य भी इन्हीं लोक-नाट्यों के अंग होते हैं।

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १३०।

लोक कहानियाँ

लोक कहानियाँ शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही प्रकार के समुदायों की परंपरागत मौखिक संपत्ति होती हैं। ऐसी कहानियाँ सभी देशों के लोक जीवन में प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। जाड़े की ठिठुरती रात में अलाव के चारों ओर बैठा हुआ एक किसान परिवार इन्हीं कहानियों से अपना मनोरंजन करता है। छोटे बच्चों को सुलाने के लिये या उनका जी बहलाने के लिये माताओं और दादी नानी द्वारा कही जाने वाली कहानियाँ इसी कोटि की होती हैं। सारे विश्व में इन कहानियों का रूप प्रायः एक सा पाया गया है। वस्तु और शैली की दृष्टि से इनमें समान रूढ़ियों का रूप व्यवहृत हुआ है। अभिप्रायो (मोटिफ़) की दृष्टि से भी इनमें अद्भुत साम्य है। इन लौकिक कहानियों का समादर समाज के प्रत्येक वर्ग में समान रूप से होता है। एक साहित्यिक कृति केवल शिक्षित समुदाय के कुछ लोगों के बीच ही ख्याति प्राप्त करती है, किन्तु लोक कहानियाँ सामान्य जन जीवन के आकर्षण का केन्द्र होती हैं। राजा के महलों से लेकर गरीब की झोपड़ियों तक इनका समान रूप से आदर होता है।[1] इस प्रकार की लोक कहानियों की साहित्यिक परंपरा भी होती है। भारतीय कथा साहित्य के–'पंचतन्त्र', 'हितोपदेश' और 'कथा-सरित-सागर' आदि ग्रंथ ऐसी कहानियों के संग्रह हैं।

---

1. "A literary masterpiece becomes famous only among the few who are sufficiently literate ; the audience for a folktale is all mankind.....Such tales have been able to serve in the nurseries of royalty, in the huts of peasants, in the imagination of artists, in the warp and woof of many cultures."

   —Milton Rugoff— "A Harvest of World Folk-tales" (Introduction.)

लोक कहानियों की इस साहित्यिक और मौखिक परंपरा के बीच विषय-वस्तु की दृष्टि से अन्तर स्थापित करना कठिन होता है।[1]

वार्त्ताएँ

ये लोक-जीवन के मौखिक मनोरंजन और सशक्त भावाभिव्यक्ति का माध्यम होती हैं। लोक-कथाओं और लोक गीतों की अपेक्षा इनका आकार बहुत छोटा होता है। लोक-कण्ठ प्रत्येक समय अपनी बातचीत के बीच-बीच में इनका व्यवहार करता है। इनके विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण ऊपर की तालिका में किया जा चुका है। इनका एक रूप पहेलियाँ और मुकरियाँ हैं। साहित्य में अमीर खुसरो की पहेलियाँ इन्हीं लौकिक पहेलियों का साहित्यिक विकास हैं।

(४) लोक-तत्व साहित्य के उपादान स्वरूप

लोकवार्ताओं के पीछे लोक परंपरा की ऐतिहासिक, सामूहिक विश्वासों की सामाजिक और लोकरंजन की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि होती है। उनमें एक ऐसी आन्तरिक शक्ति होती है जिसके बल पर वे युग-युगान्तर तक टिकी रहती हैं। उनकी प्रेरणा का स्रोत इतना चिरन्तन होता है कि एक बार जब उनकी धारा फूट निकलती है तो सूखती नहीं और सदैव लोकभूमि को आप्लावित करती रहती है। इनकी इसी

---

1. "The study of the folktale is concerned with both the literary and the oral tradition. No sharp line of demarcation can be drawn between the two..... into the other."

—Dictionary of World Literature, pp. 242—48

आन्तरिक शक्ति के कारण प्रत्येक देश के साहित्य ने इनका उपयोग किया है। जब किसी साहित्यकार को जनता के निकट जाने की आवश्यकता पड़ी है, जब उसने लोक जीवन को किसी प्रकार का धार्मिक, सामाजिक अथवा क्रान्तिकारी सन्देश देना चाहा है, तब उसने इन लोकवार्ताओं के उपादानों का आश्रय लिया है।

ये लोक-वार्तायें हमारे लिये कई दृष्टियों से बहुत उपयोगी हैं। हम जब वर्तमान के द्वार पर खड़े होकर अतीत की ओर मुड़ कर देखते हैं और उसे समझना चाहते हैं तो इतिहास का सहारा लेते हैं। किन्तु जिसे इतिहास कहा जाता है, वह राजाओं और महाराजाओं के ऐश्वर्य की कहानी है, उस जन-जीवन की नहीं जिसके हम अंग हैं। इस दशा में हमें जन-जीवन की कहानी समझने के लिये लोक वार्ताओं का सहारा लेना पड़ता है और जब हम ऐसे साहित्य के सृजन की आवश्यकता समझते हैं जो हमारी वर्तमान और आगामी पीढ़ियों को लोक-संस्कृति से परिचित करा सके तो हमें अपने साहित्य के उपादान इन्हीं लोक-वार्ताओं से चुनने पड़ते हैं। डा० सत्येन्द्र के शब्दों में—"लोक जीवन में प्रचलित वार्ताओं का उपयोग प्रत्येक धर्म के साहित्य ने किया है, ऐसा प्रतीत होता है। बाल्मीकि रामायण और तुलसी के रामचरित-मानस की कथा में भेद है। निश्चय ही तुलसी ने अपने कथानक को लोक प्रचलित वार्ता से संशोधित किया है। सूफी कवियों ने तो लोक कहानियों को ही अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन बनाया।"[1] भारतीय धर्म साधना के साहित्य में लोकवार्ताओं की रूपरेखा में अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया था। मध्यकालीन सन्त-जन जीवन के इतना निकट आये थे कि उनके साहित्य पर शास्त्र की

---

१. डा० सत्येन्द्र, 'ब्रजलोक संस्कृति'—'लोकवार्ता और लोकगीत', शीर्षक निबन्ध से।

अपेक्षा लोक की छाप अधिक पड़ी। इसीलिये आज के पाठक को-जो शास्त्र का पण्डित अधिक होता है और लोक का कम-इस साहित्य के अध्ययन में कठिनाई होती है। इस सम्बन्ध में पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कथन उल्लेखनीय है--

"भारतीय धर्म साधना का अध्ययन बहुत जटिल और उलझा हुआ कार्य है। इसे सुचारु रूप से करने के लिये केवल लिखित साहित्य से काम नहीं चल सकता। लोक-कथा, मूर्ति और मन्दिर, साधुओं के विशेष-विशेष सम्प्रदाय, उनकी रीति-नीति, आचार-विचार, पूजा-अनुष्ठान आदि की जानकारी परम आवश्यक है।"[१] एक स्थान पर तो पण्डित जी ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि मध्यकालीन सन्त-साहित्य के निर्माण में लोकवार्ताओं का महत्वपूर्ण योग है।

"निर्गुण भाव से भजन करने वाले भक्तों की वाणियों के अध्ययन के लिये शास्त्र बहुत कम सहायक है। अब तक इनके अध्ययन के लिये जो सामग्री व्यवहृत होती आ रही है, वह पर्याप्त नहीं है। हमें अभी तक ठीक-ठीक नहीं मालूम कि किस प्रकार की सामाजिक अवस्थाओं के भीतर भक्ति का आन्दोलन शुरू हुआ था। इस बात को जानने का सबसे महत्वपूर्ण साधन लोक-गीत, लोक-कथानक और लोकोक्तियाँ हैं और उतने ही महत्वपूर्ण विषय हैं भिन्न-भिन्न जातियों और सम्प्रदायों की राजनीति, पूजा-पद्धति और अनुष्ठानों तथा आचारों की जानकारी।"[२]

जन-जीवन में प्रचलित लोक-कथायें और लोक-गीत लोकवार्ता का अविभाज्य अंग हैं। इनमें लोकरुचि की सरल अभिव्यक्ति तो होती ही है, साथ ही ये प्रत्येक युग और प्रत्येक समुदाय के श्रोताओं के लिये मनो-

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी-'मध्यकालीन धर्म साधना', पृ० १३।
२. वही, पृ० ६४।

रंजन और जन-शिक्षा का उपयुक्त साधन होते हैं। इस दृष्टि से इन लोक-कथाओं और लोक-गीतों में तथा सत्-साहित्य में लक्ष्य-साम्य है। साहित्य भी लोक रुचि का लोकरंजक चित्रण होता है। इसीलिये इस लोक साहित्य ने शास्त्रीय साहित्य को विशेष रूप से प्रभावित किया है। हमें तो ऐसा लगता है कि हमारे आज के साहित्य की प्रेरणा का आदि स्रोत यह लोक साहित्य ही रहा होगा। शास्त्रीय साहित्य की कोटि में आने वाले प्रबन्ध-काव्य, रूपक, गीति-काव्य आदि इन्हीं लोक-कथाओं और लोक-गीतों के विकसित और सुसंस्कृत रूप से जान पड़ते हैं। लोक-कथाओं का आश्रय लेकर भारत के सूफी कवियों ने प्रबन्ध काव्य लिखने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। 'हीर राँझा', 'शशि पुन्नो', 'सोहनी महिवाल', 'सावलिंग सदेवृल्ल', 'पद्मावती' और 'मृगावती' जैसी लोक प्रचलित गाथाओं को साहित्यिक ढाचे में बैठा करके उन्होंने अपनी काव्य कुशलता का परिचय दिया है। लोक-गीतों में से कितने गीत तो इतने लोक प्रचलित और जनप्रिय हुए कि जनता ने उन्हें लिखित रूप देकर सदैव के लिये सुरक्षित कर लिया है। उदाहरण के लिये हम राजस्थानी 'ढोला-मारू' का गीत ले सकते हैं। यह एक रोमांटिक लोक प्रचलित गाथा है। इसमें राजस्थानी आत्मा के और प्रेम के विविध पहलू अंकित हुए हैं। इसके विषय में राजस्थान में निम्नलिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

सोरठियों दूहो भलो, भलि मरवणरी बात।
जोबन छाई धण भली, तारां छाई रात॥[1]

लोकगीतों ने स्वतन्त्र रूप से भी साहित्य निर्माण में योग दिया है। क्या भाषा, क्या भाव और क्या छन्द सभी दिशाओं में हिन्दी कविता लोक-गीतों से प्रभावित हुई है। श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 'ढोला मारू रा दूहा', पृ० ८।

की रानी' का आधार बुन्देली लोक-गीत और गाथायें है जैसा कि उन्होंने अपने हर छन्द के अन्त में स्पष्ट रूप से कहा है—

"बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी॥"

आधुनिक हिन्दी कविता का नवीनतम स्वर भी लोक-गीतों की बांसुरी से ही मुखरित हो रहा है।

साहित्य के उपादान स्वरूप इन लोक-गीतों की उपयोगिता के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है—

"भारतीय हृदय का सामान्य रूप पहचानने के लिये पुराने प्रचलित ग्रामगीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। केवल पंडितों द्वारा प्रवर्तित काव्य-धारा का अनुशीलन ही अलम् नहीं..... जब जब शिष्टों का काव्य पंडितों द्वारा बँध कर निश्चेष्ट और संकुचित होगा तब तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भाव धारा से जीवन तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।"[१]

लोक-गीतों की विभिन्न शैलियों और उसके छन्दों ने काव्य-साहित्य के विभिन्न रूपों पर अपना प्रभाव डाला है। बारहमासा वर्णन, चौमासा वर्णन और विरह चौंतीसा आदि की परम्परा वस्तुतः लोकगीतों की ही है। हमारे हिन्दी साहित्य ने इन शैलियों को लोकगीतों से लिया है। लौकिक छन्द किस प्रकार साहित्यिक बन जाते हैं इसका सर्वोत्तम उदाहरण दोहा छन्द है। यह अपभ्रंश का सर्वप्रिय छन्द रहा है। इसका उद्गम आभीरों के विरहा गान से हुआ है। आज के अहीरों का विरहा

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० ७२४-२५।

छन्द और यह दोहा बहुत कुछ मिलता जुलता है। संभव है दोहे का विकास आभीरों के किसी लोक छन्द से ही हुआ हो।[1]

लोक-गीतों और लोक कथाओं की काव्य एवं कथानक रूढ़ियाँ भी शिष्टों के प्रयोग द्वारा साहित्यिक हो जाती है। प्राचीन हिन्दी साहित्य के निर्माण में इन विभिन्न लोक रूढ़ियों का पर्याप्त योग है। जिस प्रकार लोक-गीत और लोक-कहानियाँ सत् साहित्य के निर्माण में योग देती हैं, उसी प्रकार लोक जीवन की प्रथायें, रीतियाँ, विश्वास आदि भी प्रत्येक देश के साहित्य में स्थान पाते हैं। सारांश यह कि लोकवार्ता के विभिन्न उपादान साहित्य की सर्जना में अनेक प्रकार से सहायक सिद्ध होते हैं। प्रत्येक साहित्यिक कृति में इन लोक-उपादानों को ढूँढा जा सकता है।

(५) सूफ़ी और उनका काव्य

सूफ़ी सन्त और भक्ति आन्दोलन

भारतवर्ष में सूफ़ी साधकों का प्रवेश मुस्लिम जाति के साथ हुआ। मुसलमान सत्ता के सुदृढ़ हो जाने के पश्चात्—ये सूफ़ी साधक अन्य मुसलमानों की भाति भारतीय हो गये। मुसलमान जाति की ही एक शाखा होने के कारण इन्हें राज्याश्रय तो मिला ही; साथ ही साथ इस देश की जनता ने भी इनका स्वागत किया क्योंकि अन्य मुसलमानों की भांति ये इस्लाम के कट्टर प्रचारक नहीं थे और इनके धार्मिक सिद्धान्त इस्लामी विचारधारा की अपेक्षा भारतीय विचारधारा के अधिक निकट

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', पृ० ६२.

थे। ये सूफ़ी साधक जिस युग में इस देश में आये, साहित्य के इतिहास में उसे भक्तिकाल कहा जाता है। सारे देश में भक्ति भावना के रूप में एक विराट जन आन्दोलन चल रहा था। भक्ति का यह विशाल और व्यापक आन्दोलन धर्म का ही आश्रय लेकर चल रहा था किन्तु इसने धर्म के स्वरूप को बदल दिया था। धर्म के स्रोत से उद्भूत यह भक्ति आन्दोलन शास्त्रीय ज्ञान से थोड़ा आगे बढ़कर भावना, अनुभूति और प्रेमोल्लास की वस्तु बन चला था। इस समय तक मुस्लिम शासक सत्तारूढ़ हो गये थे और हिन्दू मुसलमानों का पारस्परिक संघर्ष कुछ कम हो गया था। फिर भी, दोनों सम्प्रदायों में घृणा और वैमनस्य की चिनगारियाँ एकदम बुझ नहीं गई थीं। इस बची खुची अमानवीयता एवं साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिये निर्गुण कहे जाने वाले सन्तों ने दोनों ही जातियों को लक्ष्य करके अपनी झाड़ फटकार शुरू की। कबीर आदि सन्तों ने हिन्दू और मुसलमान धर्म की मूल प्रवृत्तियों को लेकर यह दिखलाने का प्रयत्न किया कि तात्विक दृष्टि से उनमें बहुत कम मतभेद है, किन्तु इनका प्रयत्न 'हृदय को स्पर्श करने वाला' न था। "मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध है वह उसके द्वारा न व्यक्त हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदय-साम्य का अनुभव मनुष्य कभी-कभी किया करता है उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। कुतबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रक्खा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव पड़ता है। हिन्दू और मुसलमान-हृदय को सामने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।"[१] इस प्रकार इन प्रेम कहानीकार सूफी कवियों ने अपने को भक्ति आन्दोलन का अंग बना करके-हिन्दू और

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जा० ग्र० की भूमिका-द्वि० सं० पृ० २-३।

मुसलमान जनता के बीच प्रेम और सद्भावना का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया।

सूफ़ी और इस्लाम प्रचार

प्रारम्भ में सूफ़ी साधक और सन्त ही नहीं थे। वे इस्लाम के प्रचारक भी थे। 'बा-शरह' कहे जाने वाले या इस्लामी धर्म शास्त्र के साथ सामंजस्य स्थापित करके उपासना करने वाले सूफ़ी सन्त मुस्लिम शासकों के धर्म प्रचार और शक्ति संस्थापना में भी योग देते थे। निम्न वर्ग के वे हिन्दू जो समाज में हीन और दलित समझे जाते थे एवं उच्च वर्ण के हिन्दुओं से असन्तुष्ट थे—इन सूफ़ियों की सहिष्णुता, उनके सरल जीवन और प्रेम से आकर्षित होकर इस्लाम की ओर आकर्षित होते थे और मुसलमान बन जाते थे। क़ाज़ी और उलमा तलवार के बल पर धर्म प्रचार के क्षेत्र में अग्रसर हुए। हिन्दुओं को उनसे घृणा हो गई। सूफ़ी प्रेम और सहिष्णुता का मन्त्र लेकर आये। हिन्दू जनता ने उन्हें अपना ही समझा। उनकी साधना से वे प्रभावित हुए। उनके पास आकर उन्होंने इस्लाम के सुन्दर रूप को भी देखा और फिर उसमें दीक्षित भी हो गये। बल पूर्वक धर्म परिवर्तनों के अतिरिक्त जितने भी धर्म परिवर्तन इस्लाम में हुए वे सूफ़ियों द्वारा ही हुए।"[1]

सूफ़ी साधकों का यह प्रचार कार्य बहुत दिनों तक न चल सका। ज्यों-ज्यों वे भारतीय चिन्तन के निकट आते गये एवं उससे प्रभावित होते गये त्यों-त्यों इस्लाम धर्म की श्रेष्ठता पर से उनका विश्वास हटता गया। धीरे-धीरे ये सूफ़ी साधक, पीर, औलिया एवं फ़क़ीर के रूप में भारतीय समाज में प्रतिष्ठित हो गये। हिन्दू और मुसलमानों द्वारा इन्हें

---

१. डा० राम रतन भटनागर, 'हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि', पृ० सं० २४०।

समान आदर मिला। इन्होंने अपने को धर्म और जाति से तटस्थ कर लिया और 'न हिन्दू न मुसलमान' की कोटि में आ गये। अब ये सूफ़ी सन्त अपने संप्रदाय के सिद्धान्तों के आधार पर काव्य लिखते थे और प्राणी मात्र में प्रेम और सद्भावना का प्रचार इनका लक्ष्य हो गया था।

सूफ़ी और उनके सम्प्रदाय

सातवीं, आठवीं शताब्दी तक सूफ़ी साधक पंजाब और सिन्ध में पहुँच चुके थे। कुछ मुसलमान सन्त दक्षिण भारत में भी अपना प्रचार कार्य करने लगे थे। किन्तु दसवीं शताब्दी के बाद से ये सूफ़ी सन्त सारे देश में दिखाई देने लगे थे। वस्तुतः भारतवर्ष में सूफ़ी संप्रदाय का प्रवेश बारहवीं शताब्दी के बाद हुआ। बारहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक इस देश में इनके चार संप्रदाय स्थापित हो गये। (१) चिश्ती संप्रदाय, (१२ वीं श०), (२) सुहरवर्दी संप्रदाय (१३ वीं श० का पूर्वार्ध), (३) कादिरी संप्रदाय (१५ वीं श०), (४) नक्शबन्दी संप्रदाय (१६ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध)।[1] इन चारों संप्रदायों में विशेष अन्तर न था। उपासना पद्धति और आचारों की दृष्टि से इनमें थोड़ी भिन्नता अवश्य थी। किन्तु इनके मूल सिद्धान्त एक से थे। इनकी सामाजिक और धार्मिक दृष्टि अत्यन्त उदार थी। अपनी इसी उदारता के कारण ये इस देश के जन जीवन को आकृष्ट करने में सफल हुए। इन्हीं संप्रदायों के आध्यात्मिक विचारों एवं पारलौकिक प्रेम (इश्क़ हक़ीकी) के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर परवर्त्ती सूफ़ी सन्तों ने अपने प्रेम काव्यों की रचना की। "लौकिक जैसी दिखने वाली कहानी का आश्रय लेकर इन सूफ़ी कवियों ने आध्यात्मिक मधुर भाव की

---

१. डा० रामकुमार वर्मा, 'हि० सा० का आ० इतिहास', द्वितीय सं० पृ० ४३२।

साधना का संकेत किया है। प्रियतम सब के हृदय में व्याप्त है, पर मिल नहीं रहा है—"पिउ हिरदय मह भेंट न होई, को रे मिलाप कहीं केहि रोई।"[1] ऐसी न जाने कितनी ही प्रेम-विरह की उद्दाम भावनाओं से ये प्रेम काव्य भरे हुए हैं। हिन्दी साहित्य में सूफ़ियों की इन प्रेम-गाथाओं की अपनी एक परम्परा है और अपनी एक निश्चित रूप-रेखा है।

इन प्रेम गाथाओं एवं सूफ़ी-काव्य साधना के विभिन्न स्वरूपों का विवेचन करने से पहले हम सूफ़ी मत एवं उसके भारतीय रूप को समझ लें। भारतीय सूफ़ी मत उसका सिद्धान्त और उसका साहित्य भारतीय विचार धाराओं एवं जन-जीवन से बहुत कुछ प्रभावित है। अरब और ईरान की सूफ़ी साधना से उसकी साधना भिन्न हो गई है। फिर भी इन दोनों साधनाओं का मूल उद्गम एक है। इसीलिये भारतीय सूफ़ी साहित्य की विवेचना से पूर्व सूफ़ी मत के मूल एवं परिवर्तित रूपों का विवेचन अनिवार्य हो जाता है।

सूफ़ी

सूफ़ी शब्द का साधारण अर्थ इस्लामी सन्त समझा जाता है। फ़ारसी में जिसे 'तसव्वुफ' कहते हैं। वह हिन्दी का सूफ़ीमत है। 'तसव्वुफ' और सूफ़ी दोनों ही शब्द लगभग एक दूसरे पर्यायवाची शब्द हैं और 'सूफ़' शब्द से बने हैं। सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति और उसके अर्थ के विषय में अनेक विद्वानों के अनेक मत हैं। "कुछ लोगों की धारणा है कि मदीना में मस्जिद के सामने सुफ़फ़ा (चबूतरा) था। उसी पर जो फ़कीर बैठते थे वे सूफ़ी कहलाये। दूसरे लोगों का कहना है कि सूफ़ी

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, म० का० धर्म सा०, पृ० २०७।

शब्द के मूल में सूफ़ (पंक्ति) है। निर्णय के दिन जो लोग अपने सदाचार एवं व्यवहार के कारण औरों से अलग एक पंक्ति में खड़े किये जायेंगे वास्तव में उन्हीं को सूफ़ कहते हैं। तीसरे दल का कथन है कि सूफ़ी वस्तुतः स्वच्छ और पवित्र होते हैं। सफा होने के कारण उन्हें सूफ़ी कहते हैं। चौथे दल के विचार में सूफ़ी शब्द सोफ़िया (ज्ञान) का रूपान्तर है। ज्ञान के कारण ही उनको सूफ़ी कहा जाता है। पर अधिकतर विद्वानों का मत है कि सूफ़ी शब्द वास्तव में 'सूफ' (ऊन) से बना है। सूफ़ धारी ही वास्तव में सूफ़ी के नाम से विख्यात हुए। निकल्सन, ब्राउन, मार्गोलियथ प्रभृति विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफ़ी शब्द सूफ से बना है। अनेक मुस्लिम आलिमों ने भी इसे स्वीकार किया है।"[1] यदि हम इन सभी मतों को मिलाकर एक साथ, देखें तो सूफ़ी शब्द का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है। सूफ़ी वे इस्लामी सन्त हैं जो स्वच्छ और पवित्र होते हैं। सदाचार ही उनका जीवन होता है और ज्ञानार्जन ही उनका लक्ष्य। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण अन्तिम निर्णय के दिन जब वे 'खुदा' के सम्मुख खड़े किये जाते हैं तो अन्य सामान्य लोगों से अलग उनकी एक विशिष्ट पंक्ति होती है। उच्च विचारों एवं आध्यात्म चिन्तन के साथ-साथ ये सन्त सादे जीवन को भी महत्व देते हैं और ऊन से बने हुए मोटे वस्त्रों को धारण करते हैं। हिन्दी साहित्य में भक्ति काल की निर्गुण प्रेमाश्रयी-धारा के अन्तर्गत जिन कवियों का नाम लिया जाता है वे इन्हीं सूफ़ी सन्तों की परम्परा में आते हैं।

सूफ़ी मत के मूल उद्गम-क्षेत्र अरब और ईरान हैं। अपने जन्म काल से लेकर विकास काल तक में यह मत यहूदी, मसीही, नास्तिक, मानी, नवअफ़लातूनी, बौद्ध एवं भारतीय वेदान्त आदि अनेक विचार-

---

१. आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, 'तसव्वुफ अथवा सूफ़ीमत', पृ० १।

धाराओं से प्रभावित हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस्लाम धर्म के जन्म से पहले ही सूफी धर्म का आविर्भाव हो चुका था। फिर भी सूफी मत पर इस्लाम का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा है। सूफियों का एक दल तो मुस्लिम मुल्लाओं द्वारा 'बा-शरह' क़रार दे दिया गया है और वह इस्लाम का ही अंग माना जाता है। जो भी हो इस्लाम और सूफी विचार धाराओं में कुछ सैद्धान्तिक अन्तर है। इन दोनों के मूलभूत सिद्धान्तों के आधार पर इन्हें दो भिन्न दृष्टियों से देखा जाता है।

सूफ़ी और इस्लाम मत

इस्लाम—एकेश्वरवाद का प्रबल समर्थक है। इस्लाम के अनुयायी एक मात्र अल्लाह की ही सत्ता मानते हैं। उस सर्वोपरि सत्ता के अतिरिक्त वे किसी अन्य देवता की कल्पना नहीं करते। कुछ लोगों का भ्रम है कि एकेश्वरवाद और भारतीय अद्वैतवाद एक ही चीज़ है। परन्तु ये दोनों वाद एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। अद्वैतवाद आत्मा और परमात्मा की सत्ता में विभेद नहीं स्थापित करता। वह जीवन और ब्रह्म के एकत्व में विश्वास करता है। किन्तु एकेश्वरवाद में इस तरह की कोई धारणा नहीं है। "वहाँ ख़ुदा रसूल और इन्सानों की अलग-अलग सत्ता है। वास्तव में रसूल (पैग़म्बर) ईश्वर से अधिक निकट विशिष्ट मानव है जिसके माध्यम से साधारण जीव ख़ुदा तक पहुँचता है। यह एक प्रकार से द्वैत हुआ। यद्यपि मुसलमान विचारक इस बात को यों स्वीकार नहीं करते।"[1] सूफी सन्त इस्लाम की ही भांति अनेक देववाद के प्रतिकूल ईश्वर की एकता (यूनिटी आव गाड) एवं उसकी सर्वोपरिता (ट्रेन्सेडेन्टल गाडहुड) में विश्वास करते थे। किन्तु वे इस्लामी एकेश्वरवाद में अधिक विश्वास नहीं करते थे। "वे भगवान् को एकेश्वर रूप में नहीं बल्कि विशिष्टाद्वैतवादी वेदान्तियों की तरह

---

१. डा० रामरतन भटनागर, 'जायसी', पृ० २३।

मानते थे।"[1] उनका ख़ुदा 'जलाल' (शासक) की अपेक्षा 'रहीम' (करुणामय) अधिक है। कुरान में अल्लाह की कल्पना शाश्वत एवं सगुण साकार रूप में की गई है। उसे 'तजसीम' कहा गया है। किन्तु सूफ़ी सन्त अल्लाह को निर्गुण, निराकार ब्रह्म के रूप में देखते हैं। उनका ख़ुदा अन्तर्यामिन है। हृदय के दर्पण को पवित्र और स्वच्छ करके वहाँ उसके प्रतिबिम्ब की झाँकी देखी जा सकती है।

प्रेम-भाव की साधना

ऊपर कहा जा चुका है कि सूफ़ियों के अल्लाह का स्वरूप वेदान्तियों के ब्रह्मवाद से अधिक मिलता जुलता है। इसीलिये सूफ़ियों में रहस्यवाद और मादनभाव की प्रतिष्ठा हुई है। उनके मत में रति-भाव की प्रधानता है। उनकी साधना का मूल मंत्र है प्रेम। वे ईश्वर को प्रियतम अथवा प्रियतमा के रूप में देखते हैं। उनकी 'मुहब्बत' में उन्हें दुनिया का सारा मज़ा मिलता है और वे उसके 'ज़िक्र' (नामस्मरण) एवं 'फ़िक्र' (ध्यान) में दीवाने रहते हैं। सृष्टि के कण-कण में उस परम प्रिय रूप का 'जलवा' देखना और उसके विरह में तड़पना इनके जीवन का प्रधान लक्ष्य है--

वे हिजाबी यह कि हर ज़र्रे में जलवा आशिकार।
फिर भी पर्दा यह कि सूरत आज तक देखी नहीं॥

भारतीय सूफ़ी साहित्य में इसी भावना की प्रतिष्ठा की गई है। जायसी आदि सूफ़ी कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने पारलौकिक प्रेम का वर्णन किया है। उन्होंने रूपकों एवम् प्रतीकों का आश्रय ले करके उसी अलौकिक परम-प्रिय सत्ता की ओर इशारा किया है।

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ० ५५।

सूफ़ी मत पर भारतीय प्रभाव

हिन्दी साहित्य के इतिहास में, निर्गुणोपासक भक्तों की कोटि में प्रेमाश्रयी काव्यधारा के अन्तर्गत आने वाले इन सूफ़ी कवियों की काव्य-साधना नाना प्रकार की विचार धाराओं से प्रभावित है। जहाँ तक पारिभाषिक शब्दों, चिन्तन-शैलियों और काव्य रूपों का सम्बन्ध है, वह ईरान की धरती से अधिक सम्बन्धित है; किन्तु इसमें ऐसा भी बहुत कुछ है जो योग दर्शन और उपनिषद्-दर्शन से प्रभावित है। अरब-भारत के प्राचीन काल के सम्बन्धों ने सूफ़ीमत पर वेदान्त का बड़ा गहरा प्रभाव डाला था। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में—

"उसमें वेदान्त की पूरी पृष्ठभूमि है और अपने मूल रूप में सूफ़ी संप्रदाय वेदान्त का रूपान्तर मात्र है।"[1] जिस समय सूफ़ीमत पहले पहल (८वीं–१०वीं शताब्दी) भारतवर्ष में आया सारे देश में नाथों और सिद्धों का बोल-बाला था। उनके तंत्र-मंत्र, हठयोग और अन्य करामाती साधनाओं का जन-जीवन पर बड़ा असर था। सूफ़ी सन्तों ने इन नाथों और सिद्धों से भी पारस्परिक विचार विनिमय किया एवं उनसे प्रभावित भी हुए। ये सूफ़ी सन्त जब धीरे-धीरे इस सारे देश में फैल गये और यहाँ के निवासी हो गये तब उन्हें हिन्दू जीवन के निकटतम संपर्क में आने का अवसर मिला। सूफ़ी सन्तों के रूप में हिन्दू जनता ने इस्लाम का वह स्वरूप देखा जिसके हाथ में मज़हब के प्रचार एवं शासन की स्थापना के लिये तलवार नहीं थी, जो कट्टरपंथी मुसलमानों की अपेक्षा अधिक सहिष्णु एवं अधिक उदार था। इसीलिये हिन्दू जनता ने इन सूफ़ी सन्तों का आदर किया। बहुतों ने उन्हें अपना गुरू मान लिया और उनके धर्म में दीक्षित हो गये। सूफ़ियों और हिन्दू

---

१. डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ० ४३०।

जनता का यह पारस्परिक सम्बन्ध ज्यों-ज्यों घनिष्ट होता गया त्यों-त्यों सूफी मतवाद में अनेक हिन्दू विचार धाराओं एवं उपासना पद्धतियों का समावेश होता गया। सूफी सन्त इस संसार में केवल एक ईश्वर की सत्ता को छोड़ कर शेष सब को माया कहने लगे। अवतारवाद, कर्मवाद और आवागमन के सिद्धान्तों को भी उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार साधारण मुसलमानों की अपेक्षा सूफी सन्तों ने अपने साम्प्रदायिक सिद्धान्तों को बहुत ढीला कर दिया। हिन्दू जीवन और हिन्दू धर्म में उन्होंने जो कुछ अच्छा देखा उस सब को अपने मतवाद में सम्मिलित कर लिया।

सूफ़ियों के तीन वर्ग

पहला वर्ग उन सूफ़ियों का है जो भारतीय साधना पद्धति से प्रभावित हुए थे। ये मुख्यतः दार्शनिक और तत्व-चिन्तक थे। धर्म, देश एवं जाति आदि के भेदों-विभेदों में इनकी रुचि नहीं थी। धार्मिक बाह्याडम्बरों से इन्हें विशेष घृणा थी। धर्म परिवर्तन आदि में इनका विश्वास नहीं था। ईश्वर की प्राप्ति के लिये ये किसी एक उपासना-पद्धति या किसी एक धर्म को विशिष्ट महत्व नहीं देते थे—इस सम्बन्ध में इनका स्पष्ट कथन था कि—

विधिना के मारग हैं तेते।
सरग नखत तन रोयाँ जेते॥ —जायसी

इन सहिष्णु सन्तों के अतिरिक्त दूसरा वर्ग उन सूफी साधकों का था जो मज़हबी मामलों में अधिक रूढ़िवादी थे। इनके लिये इस्लाम ही एक मात्र सच्चा धर्म था। मुहम्मद साहब और क़ुरान की महत्ता में इनकी पूरी आस्था थी। ये धर्म परिवर्तन में भी विश्वास करते थे।

उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के सूफी साधकों के अतिरिक्त एक तीसरी कोटि के सूफी मतानुयायी और थे। इनकी संख्या सबसे अधिक थी। इनमें से अधिकांश तो ऐसे थे जो दो ही एक पुश्त से मुसलमान हुए

थे एवं जिनके कुछ हिन्दू संस्कार किसी न किसी रूप में चले आ रहे थे। कुरान उनके लिये एक ईश्वरीय ग्रंथ था। मुहम्मद उनके एक रसूल थे। किन्तु अन्य धर्मों के महान पुरुषों एवं धार्मिक ग्रंथों के प्रति इनकी दृष्टि उदार थी। सम्भवतः इन्होंने सूफ़ी सिद्धान्तों का भी गहरा अध्ययन नहीं किया था। ये जन भावनाओं से अधिक प्रभावित थे। अपने समय की परम्परागत जनश्रुतियों एवं विश्वासों को इन्होंने धर्म की मान्यता दे दी थी। सूफ़ियों का यह समुदाय हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समाजों को विशेष प्रिय था। इस कोटि के सूफ़ी सन्तों का जो साहित्य है वह अन्य कट्टर पंथी और दार्शनिक साधकों के साहित्य की अपेक्षा अधिक सरल है। उसमें शास्त्रीय सिद्धान्तों के स्थान पर लोक भावनाओं को अधिक महत्व दिया गया है। हिन्दी काव्य साहित्य के सूफ़ी कवि सम्भवतः इसी कोटि के हैं। आगामी पृष्ठों में हम इसी कोटि के कवियों के काव्यों की सामान्य लौकिक विशेषताओं का विवेचन करेंगे।

हिन्दी के सूफ़ी काव्यों की सामान्य लौकिक विशेषताएँ

(क) स्रोत--इन काव्यों की कथाओं का उद्गम स्रोत इस देश की लोक प्रचलित कहानियाँ हैं। ऐसी कहानियों की परम्परा बड़ी पुरानी है। इनका एक प्राचीन और वृहद् संग्रह गुणाढ्य कवि कृत 'वृहत् कथा' थी। कीथ महोदय ने इसे अपने समय की अत्यन्त लोक प्रचलित कथाओं का कोश कहा है।[1] यह कथा पैशाची में थी। इसका मूल-

---

1. "As the Sanskrit Panchatantra or Tantrakhyayika heads the history of the beast fable, through the creation of a new literary genere, so the Brihatkatha of Gunadhya, in Paishachi Prakrit heads the literature of tale .. . Gunadhya drew freely on the travellers' tales and the popular narratives of this day."
—Classical Sanskrit Literature, A. B. Keith, 1923.

स्वरूप तो अब प्राप्त नहीं है किन्तु क्षेमेन्द्र और सोमदेव आदि कवियों द्वारा—'वृहत्-कथा-मंजरी' और 'कथा-सरित-सागर' के नाम से संस्कृत में रूपान्तरित होकर यह बची हुई है।• ये कहानियाँ जनकण्ठ में बस कर एक युग से दूसरे युग की यात्रा तो करती ही रहीं साथ ही साथ संस्कृत के पश्चात् प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से साहित्य में भी जीवित रहीं। हिन्दी साहित्य के आरम्भ-काल में चन्द आदि चारण कवियों ने इन कथाओं का पर्याप्त सहारा लिया। किन्तु आगे चलकर भक्तिकाल में इन कथाओं की उपेक्षा होने लगी। भक्तिकालीन कवियों का विषय धर्म सम्बन्धित था। अतः सूर, तुलसी आदि कवियों ने पौराणिक आख्यानों का सहारा लिया। इस कोटि के कवियों ने बाल्मीकि कृत रामायण एवं महर्षि व्यास कृत महाभारत को अपनी काव्य साधना का आधार बनाया। फिर भी लोक कथाओं की धारा एकदम सूख नहीं गई थी। पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—"(उनका मूल रूप) जो अपभ्रंश साहित्य के पश्चिमी आकार से सीधे चला आ रहा था.....(अब भी) गाँवों की बैठकों में कथानक रूप से और गान रूप से चल रहा था।.....सूफ़ी साधकों ने पौराणिक आख्यानों के बदले इन लोक प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई।"[1] लगभग सभी सूफ़ी कवियों ने कथा का वही रूप अपनाया जो लोक जीवन की मौखिक परम्परा में लोक-गीतों एवं लोक-कथाओं के रूप में सुरक्षित था। उद्गम स्रोत एक होने के कारण इन सभी सूफ़ी कहानियों में अद्भुत समानता है। 'मृगावती', 'मधुमालती' और 'पद्मावत' आदि सूफ़ी ग्रंथों की कहानियाँ एक से सांचे में ढली जान पड़ती हैं।

(ख) प्रेमाख्यान—इन सभी कवियों की रचनाएँ प्रेम कहानी के रूप में लिखी गई हैं। जन जीवन में आज भी अनेक राजकुमारों और

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ५७।

राजकुमारियों की प्रेम कहानियाँ प्रचलित हैं। 'एक था राजा एक थी रानी' से प्रारम्भ होकर ये कहानियाँ उनके विरह-मिलन की विविध दशाओं का चित्रण करने के पश्चात् 'जैसे उनका राज पाट लौटा वैसे सब का लौटे' कह कर समाप्त होती हैं। सूफ़ी काव्यों की कहानियाँ भी ऐसी ही जान पड़ती हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है कि--"इन कहानियों का विषय तो वही पुराना होता है अर्थात् किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी के अलौकिक सौंदर्य की बात सुनकर उसके प्रेम में पागल होना और घर बार छोड़कर निकल पड़ना तथा अनेक कष्ट झेल कर अन्त में उस राजकुमारी को प्राप्त करना।"[१] शुक्ल जी के इस कथन को थोड़ा विस्तार देकर इस प्रकार कहा जा सकता है--"कोई राजकुमार किसी राजकुमारी के रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर या प्रत्यक्ष या स्वप्न या चित्र में देख कर आकर्षित होता है। उधर भी यही हालत होती है। अंत में वह उसकी खोज में चल पड़ता है। उसे कोई मार्ग प्रदर्शक भी मिल जाता है। यह अधिकतर राजकुमारी का भेजा हुआ कोई दूत या दूत का काम करने वाला कोई पक्षी या तोता हुआ करता है। कई बार फलागम होते-होते.....कोई ऐसी भूल उससे होती है जिससे उसकी उद्देश्य-सिद्धि फिर एक अनिश्चित काल तक के लिये रुक जाती है।"[२] अंत में वह अपनी प्रेम-साधना में सफल होता है और अपनी प्रिया को प्राप्त कर लेता है। कुछ कथानक दुखान्त भी हो जाते हैं। इन कहानियों को एक शब्द रोमांस की संज्ञा दी जा सकती है।

(ग) प्रेमाख्यानकों की परम्परा--फ़ारसी साहित्य में लैला-मजनूँ, शीरीं-फरहाद आदि की कहानियों के रूप में ये रोमानी कहानियाँ व्यव-

---

१. पं० रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२।
२. हिन्दी के कवि और काव्य, भाग तीन, पृ० ८-९।

हृत हुई है। हिन्दी साहित्य में भी प्रेमाख्यानक काव्यों के नाम से इनकी एक लम्बी परम्परा है। स्वयं मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने 'पद्मावत' में इन प्रेम कहानियों की तालिका प्रस्तुत की है--

बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला। तू जोगी कित आहि अकेला॥
बिक्रम धंसा प्रेम के बारा। सपनावति कहं गएउ पतारा॥
मधू पाछ मुगुधावति लागी। गगन पूर होइगा बैरागी॥
राज कुंवर कंचनपुर गएऊ। मिरगावति कहं जोगी भएऊ॥
साध कुंवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू॥
प्रेमावति कहं सुर सर साधा। उषा लागि अनिरुध बर लाँधा॥[1]

रत्नसेन के पास हीरामन शुक के माध्यम से पद्मावती द्वारा प्रेषित इस संदेश में स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती एवं प्रेमावती आदि कि कहानियों की चर्चा आई है। यहाँ इनका नाम-मात्र गिनाया गया है और कोई विस्तृत परिचय नहीं दिया गया है। फिर भी जिस संदर्भ में दृष्टांत स्वरूप इनका उल्लेख हुआ है उसके आधार पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये कहानियाँ प्रेम कहानियाँ हैं और जायसी इनसे परिचित थे।

प्रश्न यह उठता है कि सूफ़ी कवियों द्वारा संगृहीत ये कहानियाँ लौकिक हैं अथवा इनकी कोई निश्चित साहित्यिक परम्परा है? वस्तुतः यह जान सकना बड़ा कठिन है कि कोई कहानी कब तक जन-प्रिय एवं लोक-प्रचलित रही और कब वह साहित्यकारों द्वारा अपना ली गई और फिर कब साहित्यिक परम्परा के अन्तर्गत आ गई। जायसी ने जिन कहानियों की ओर संकेत किया है उनके लौकिक अथवा साहित्यिक होने के सम्बन्ध में विद्वानों के दो वर्ग हैं। एक तो उन्हें प्रेमाख्यानक-

---

१. जायसी ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १००।

काव्यों की साहित्यिक परम्परा में मानता है, दूसरा उन्हें लोक कहानियों की कोटि में रखता है। पं० रामचंद्र शुक्ल, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', एवं बाबू श्याम सुन्दर दास प्रभृति विद्वान इन कहानियों की एक साहित्यिक परम्परा मानते हैं।[1] यहाँ पर पं० रामचंद्र शुक्ल का एक कथन उल्लेखनीय है—"विक्रमादित्य और ऊषा अनिरुद्ध की प्रसिद्ध कथाओं को छोड़ देने से चार कहानियाँ जायसी के पूर्व लिखी हुई पाई जाती हैं। इनमें से मृगावती की एक खंडित प्रति का पता तो नागरी प्रचारिणी सभा को लग चुका है। मधुमालती की भी फ़ारसी अक्षरों में लिखी एक प्रति मैंने किसी सज्जन के पास देखी थी। पर किसके पास, यह स्मरण नहीं। चतुर्भुज दास कृत 'मधुमालती' की कथा नागरी प्रचारिणी सभा को मिली है।"[२]

दूसरा वर्ग उन पाश्चात्य विद्वानों का है जो इन कहानियों को लिखित एवं साहित्यिक होने की अपेक्षा लोकगृहीत और मौखिक अधिक मानते हैं। इनमें ए० जी० शिरेफ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन विद्वानों के विचार से जायसी ने जो नामावली उपर्युक्त उद्धरण में दी है वह प्रेमाख्यानक काव्यों की न होकर लोक प्रचलित कहानियों की है, जिसके स्वरूप के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य जैसा था। यह भी आवश्यक नहीं कि यह कहानियाँ लिखित हों ही, सम्भव है कि ये एक मात्र

---

1. "Most of these accept the view that Jaisi is refering to previous literary sources, but the evidence is not convincing."

—A. G. Shirreff: Padmavati, foot note 114- (LL)

२. जायसी ग्रंथावली, ना० प्र० स०।

मौखिक परम्परा में अस्तित्व रखती हों।[1] हमारे विचार से ये कहानियाँ वस्तुतः लोक गृहीत ही हैं। सूफ़ी कवियों ने इन्हें ज्यों का त्यों अपना लिया है। जहाँ कहीं उन्हें आवश्यकता पड़ी है, प्रसंगानुसार थोड़ा हेर-फेर अवश्य कर दिया है।

(घ) काव्य रूप--कुतबन, मंझन और जायसी आदि कवियों की रचनाएँ कथानक की दृष्टि से एक सांचे में ढली जान पड़ती हैं। इसी प्रकार काव्य रूप की दृष्टि से भी इनमें बड़ी समानता है। सभी ग्रंथ फ़ारसी मसनवी पद्धति पर लिखे गये हैं। मसनवी काव्य वर्णनात्मक अधिक होते हैं। इनमें मसनवी छन्द (द्विपाद; चौपाई से मिलता जुलता है) का प्रयोग होता है। प्रायः ५-७ मसनवियों के बाद विराम दिया जाता है। सभी मसनवी काव्य ईश्वर स्तुति, मुहम्मद स्तुति, समकालीन बादशाह की स्तुति और कवि के आत्म-परिचय से प्रारम्भ हुआ करते हैं। इन काव्यों में से पद्मावत जैसे कुछ काव्य महाकाव्यों की कोटि में भी आते हैं। साहित्य-दर्पणकार ने महाकाव्य की जो विशेषताएँ बतलाई हैं उन्हें इन कुछ एक सूफ़ी काव्यों में ढूँढ़ा जा सकता है! इन काव्यों में शास्त्रीय काव्य रूपों के साथ-साथ लौकिक काव्य रूपों का भी व्यवहार किया गया है। बारहमासा गान और बिरह चौंतीसा आदि की परम्परा वस्तुतः लौकिक काव्य रूपों की हैं। जायसी ने नागमती के वियोग खंड में जिस बारहमासा वर्णन को स्थान दिया है, वैसे ही बारहमासा गान आज भी अवध के गाँवों में गाए जाते हैं। यहाँ एक बारहमासी लोक-गीत की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं--

लागै असाढ़ झमाझम बरसन,
तब सुधि आय गई बलम परदेसिया की।

---

१. डा० कमल कुलश्रेष्ठ, 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य', पृ० २६।

सावन में सखि डालैं हिंडोला,
कि तब सुधि आय गई धानी चुनरिया की।

भादौं मास रैन अंधियारी,
कि बिन पियवा ही कटें नाहीं रतियाँ।

क्वार मास बिजै दसमी क मेला,
आये न श्याम, लिखीं नाहीं पतियाँ।

(ङ) भाषा—हिन्दी साहित्य में सूफ़ी रचनायें दो भाषाओं में व्यक्त हुई हैं। सुविधा के लिये एक को खड़ी बोली का साहित्य और दूसरे को अवधी का साहित्य कहा जा सकता है। पहले हम खड़ी बोली के साहित्य को लें। लाहौर, मुल्तान और दिल्ली के आस पास के सूफ़ी साधकों ने अपने प्रदेशों की बोलचाल की भाषा को अपनाया। उनकी इस भाषा को हिंदवी या खड़ी बोली कहा जाता है। यह खड़ी बोली आज की खड़ी बोली की भांति शुद्ध और परिनिष्ठित नहीं थी। न तो इसका कोई साहित्य था और न शास्त्रीय रूप। वह जनकंठ में बसने वाली सामान्य आदान-प्रदान की भाषा थी। सूफ़ी कवियों ने अपने साहित्य के लिये जन भाषा को प्रोत्साहन दिया। भारत की धरती में पैदा होने वाले इन मुसलमान साधकों के लिये यह स्वाभाविक भी था कि वे अरबी-फ़ारसी का मोह त्याग करके यहाँ की लोक भाषा का आश्रय लेते। इस भाषा में पाया जाने वाला सूफ़ी साहित्य अधिकतर फुटकर पदों, गज़लों और दोहों आदि के रूप में मिलता है। भाषा का मूल ढाँचा तो खड़ी बोली का है किन्तु उसमें अरबी, फ़ारसी ब्रज, पंजाबी, दकन तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। पश्चिमी और दक्षिणी भारत में जो सूफ़ी रचनायें हुई हैं वे इसी हिंदवी या खड़ी बोली भाषा में हुई हैं। अमीर खुसरो, मुहम्मद गैसूदराज बन्दानवाज, बाबा फ़रीद और शाह बुरहान आदि इस भाषा के प्रमुख साहित्यकार हैं।

अधिकांश सूफी साहित्य अवधी भाषा में लिखा गया है। 'बंदावत', 'मधुमालती', 'मृगावती' एवं 'पद्मावत' जैसे श्रेष्ठ ग्रंथ अवधी में हैं। पूर्वी हिन्दी प्रदेश में बसने वाले प्रायः सभी सूफियों ने इसी भाषा को अपनाया था। प्रश्न यह उठता है कि सूफियों द्वारा व्यवहरित यह अवधी क्या लोक भाषा है? परवर्ती अवधी ग्रंथ रामचरित मानस की भाषा से इस अवधी की तुलना करने पर उत्तर स्पष्ट हो जाता है। मानस पौराणिक कथा के आधार पर लिखित एक श्रेष्ठ साहित्यिक रचना है, इसीलिये उसकी भाषा शास्त्रीय अधिक है, लौकिक कम। यद्यपि उसमें कहीं-कहीं—

हम हूँ कहब अब ठकुर सुहाती। नाहीं त मौन रहब दिन राती॥

जैसी ठेठ अवधी का स्वरूप देखने को मिल जाता है फिर भी उसमें सामान्यतः जिस अवधी का प्रयोग हुआ है वह जायसी आदि सूफी कवियों की भाषा की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है। उसमें संस्कृत शब्दों और पदावलियों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। किन्तु सूफी काव्यों में न तो संस्कृत शब्दों के तत्सम रूप व्यवहृत हुए हैं और न तो भाषा का परिमार्जन ही हुआ है। सूफी कवियों के सम्मुख अवधी भाषा की कोई साहित्यिक परम्परा न थी। उन्होंने तत्कालीन जनकंठ की भाषा को ही अपने प्रचार का माध्यम बनाया। उनकी लौकिक जैसी लगने वाली कहानियों को कहने के लिये यह लोक भाषा पर्याप्त सशक्त भी थी। फिर उन्हें पंडित वर्ग अथवा मुल्ला वर्ग के लिये कुछ कहना नहीं था। उन्हें तो साधारण जनता के निकट पहुँचना था। इसलिये जन भाषा ही उनके लिये अधिक उपयोगी थी। उनकी सरल और सशक्त जन भाषा के लिये जायसी का निम्न दोहा उद्धृत किया जा सकता है—

काह हँसौ तुम मोसों, किएउ और सों नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, हम मुख बरसै मेह॥

अवधी भाषा के इस लोक रूप पर, हम पद्मावत की भाषा के साथ विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

(च) छन्द—सामान्य रूप से सभी सूफ़ी कवियों ने अपने ग्रंथों में दोहे और चौपाई के छन्दों का प्रयोग किया है। दोहा और चौपाई के छन्दों का आश्रय लेकर प्रबंध-काव्य लिखने की प्रथा बहुत प्राचीन है। दोहे चौपाइयों में कथात्मक काव्यों की परम्परा अपभ्रंश के समय से चली आ रही थी। हिन्दी के सूफ़ी कवियों और गो० तुलसीदास ने इसी परम्परा को अपनाया है। इन छंदों के स्रोत, इनकी परम्परा और इनके लोक रूप पर, पद्मावत की छंद योजना के साथ विचार किया जायगा।

(छ) उपमान—इन काव्यों की बहुत सी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ लोक जीवन से ली गई हैं। सूफ़ी कवियों ने अपने बहुत से उपमान शास्त्र की रूढ़ परम्पराओं के विरुद्ध लोक जीवन की स्वच्छन्द भावना से चुने हैं—

पेट—अस कोमल जनु मैदा लोई। इंगुर रंग सानु मन पोई।
—पुहुपावती

यहाँ पेट की उपमा इंगुर भरी मैदे की लोई से दी गई है। ऐसी लोक उपमाएँ प्रायः सभी सूफ़ी कवियों ने दी है।

(ज) आचार-विचार—इन कवियों ने अपने काव्यों में जीवन की जिन विविध परिस्थितियों, जिन रीति-रिवाजों एवं जिन सामाजिक आचारों-विचारों का अंकन किया है वे भी सामान्य रूप से लोक जीवन से सम्बन्धित हैं और एतद्देशीय हैं। वसंतोत्सव, विवाहोत्सव और भोज आदि के वर्णन इस देश के सामाजिक कृत्यों के उदाहरण हैं। इसी प्रकार इन काव्यों में सती प्रथा, गौना प्रथा, शकुन विचार, भूत प्रेत और देवी देवता आदि का भी उल्लेख हुआ है। इनके माध्यम से

अनेक लोक प्रथाओं और लोक विश्वासों का सामान्य रूप से अंकन हुआ है।

ऊपर के सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण सूफ़ी काव्य सामान्य रूप से लोकोन्मुख है। क्या कथा, क्या भाषा, शैली, छंद और उपमान, और क्या आचार विचार सभी क्षेत्रों में सूफ़ी कवियों ने लोक जीवन और लोक साहित्य के उपादानों को ग्रहण किया है।

दूसरा अध्याय

कथा पक्ष

(१) पद्मावत के कथानक का लोक रूप ।
(२) कथानक के लोक उपादान ।
(३) कथानक रूढ़ियाँ ।

केइ न जगत जस बेंचा,
केइ न लीन्ह जस मोल ।
जो यह पढ़ै कहानी,
हम्ह सवँरे दुइ बोल ॥

—पद्मावत (जायसी)

(१) लोकाख्यानक काव्यों की परम्परा

भारतीय कथा साहित्य की तीन प्राचीन धाराएँ हैं—

(१) ब्राह्मण साहित्य

(२) बौद्ध साहित्य

(३) जैन साहित्य

पुनः ब्राह्मण साहित्य तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) 'वृहत्-कथा' और उस पर आधारित 'कथा-सरित-सागर' के लोकाख्यानकों का साहित्य।

(ख) पंचतंत्र की पशु-पक्षी जगत वाली उपदेशात्मक कथाओं का साहित्य।

(ग) रामायण और महाभारत की पौराणिक गाथाओं का साहित्य।

भारतीय कथा साहित्य के प्रस्तुत वर्गीकरण में—रामायण और महाभारत की पौराणिक गाथाओं वाले साहित्य को छोड़कर शेष सभी प्रकार का साहित्य अधिकांशतः लोक-कथाओं पर आधारित है। बौद्धों और जैनों ने अपने अधिकांश चरित-काव्य लोक-कथाओं के आधार पर ही लिखे हैं। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय आख्यानक साहित्य में धार्मिक और नैतिक उपदेश देने के लिये भी लोक-कथाओं का पर्याप्त आश्रय लिया गया है। लोक-कथाओं के आधार पर चरित-काव्य एवं अनेक प्रकार के उपदेशात्मक काव्य लिखने की यह परम्परा अपभ्रंश साहित्य से होती हुई हिन्दी साहित्य तक चली आई है। सूफ़ी कवि

इसी परम्परा की परवर्ती कड़ी हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि लोक-कथाओं का आधार लेकर काव्यादि लिखने की परम्परा सूफ़ी कवियों ने ही चलाई, पर यह ठीक नहीं। इस सम्बन्ध में पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कथन उल्लेखनीय है—

"लौकिक निजन्धरी कहानियों को आश्रय करके धर्मोपदेश देना इस देश की चिराचरित प्रथा है।.....हमारे साहित्य के इतिहास में एक गलत और बेबुनियाद बात यह चल पड़ी है कि लौकिक प्रेम-कथानकों को आश्रय करके धर्म भावनाओं का उपदेश देने का कार्य सूफी कवियों ने आरम्भ किया था। बौद्धों, ब्राह्मणों और जैनों के अनेक आचार्यों ने नैतिक और धार्मिक उपदेश देने के लिये लोक-कथाओं का आश्रय लिया था।"[1]

मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' इसी परम्परा का अमर ग्रंथ है। जायसी ने इसे लोक-कथाओं के आधार पर ही लिखा है और इसके माध्यम से सूफ़ी-भक्ति-भावना के मूल मंत्र 'प्रेम' का प्रसार किया है।

(२) पद्मावत कथा और इतिहास

प्रत्येक देश के लोक-जीवन में अनेक प्रकार की कहानियाँ प्रचलित होती हैं। इनमें से कुछ ऐसी कहानियाँ होती हैं जिनका संबंध इतिहास से जुड़ा रहता है। पद्मावती की कहानी भी एक ऐसी ही लोक-प्रचलित कहानी है जिसका संबंध भारतीय इतिहास के राजपूत-

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', पृ० ७१.

काल से जुड़ा हुआ है। ऐसी ऐतिहासिक कही जाने वाली कहानियाँ अपने मूलरूप में उतनी ही लोकाकर्षक और काल्पनिक होती हैं जितनी सामान्य जन जीवन की अन्य लोक-कथाएँ। इनमें केवल ऐतिहासिक व्यक्तियों का नाम भर रहता है। इन नामों को लेकर, लोक-कण्ठ इन्हें अपनी कल्पनागत एवं परम्परागत कथानक रूढ़ियों (मोटिफ़) में ढाल देता है। वह इन नामों के साथ दो चार ऐतिहासिक एवं दो चार काल्पनिक तथ्यों का इस प्रकार घोल-मेल कर देता है कि ये नाम भी काल्पनिक निजंधरी एवं लोक कथाओं के सामान्य पात्रों का रूप ग्रहण कर लेते हैं। फिर इन कहानियों को लेकर इनमें से ऐतिहासिक तत्वों का ढूँढ़ना एक कठिन कार्य हो जाता है। ऐसी तथा कथित ऐतिहासिक कहानियों के आधार पर जब काव्यादि लिखे जाते हैं तो उनमें भी तथ्य और कल्पना का (फैक्ट्स और फिक्शन का) अद्भुत सामंजस्य हो जाता है। और फिर ये काव्य भी नाम मात्र को ऐतिहासिक रह जाते हैं। इस देश में सातवीं आठवीं शताब्दी से ही ऐसे काव्य मिलते हैं जिनके नायक-नायिकाओं के नाम मात्र ऐतिहासिक हैं किन्तु जिनका सारा ढाँचा लोक-कथाओं की एक सामान्य मशीन की उपज जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' नामक ग्रंथ में विस्तारपूर्वक विचार किया है। यहाँ उस विचारणा के कुछ महत्वपूर्ण अंश उद्धृत हैं—

"वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्तियों को पौराणिक या काल्पनिक कथा नायक जैसा बना देने की प्रवृत्ति रही है। कुछ में दैवी-शक्ति का आरोप करके पौराणिक बना दिया गया है—जैसे राम, बुद्ध, कृष्ण आदि, और कुछ में काल्पनिक रोमांस का आरोप करके निजंधरी कथाओं का आश्रय बना दिया गया है—जैसे उदयन, विक्रमादित्य और हाल.....। सब मिलाकर ऐतिहासिक काव्य काल्पनिक निजंधरी कथानकों पर आश्रित काव्य से बहुत भिन्न नहीं होते।.....भारतीय

कवि इतिहास प्रसिद्ध पात्र को भी निजंधरी कथानकों की ऊँचाई तकले जाना चाहता है।"[1]

'पद्मावत' की कथा भी एक ऐसी ही कवि-गृहीत लोक-कथा है, जिसके कुछ नाम और कुछ घटनाएँ मात्र (उत्तरार्ध की) ऐतिहासिक हैं। कुल मिला कर यह काव्य लोकाख्यानक काव्यों से भिन्न नहीं है।

(३) कहानी का लोकप्रिय रूप

इस देश में वीर-पूजा और सती-पूजा की प्रथा बड़ी पुरानी है। यहाँ की धरती पर जितने भी लोक-रक्षक और मर्यादा-पालक व्यक्तित्व अवतरित हुए हैं—भारतीय इतिहास और समाज ने उन्हें अपनी पूज्य श्रद्धा का पात्र बना लिया है। उन राष्ट्र वीरों की जीवन गाथाएँ लोक-कण्ठ में कहानी बन गई हैं और लोक-जीवन उन्हें कह सुनकर आदर्श जीवन की प्रेरणा प्राप्त करता आ रहा है। इसी प्रकार जिन विदुषी देवियों ने पत्नी-जीवन की आन निभाई है और जिन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा में प्राणों की बाजी लगा दी है, लोक-जीवन ने उन्हें भी अपनी पूजा और श्रद्धा समर्पित करके, उनके जीवन-कृत्यों को अपनी मौखिक कथाओं के अमर कोश में सुरक्षित कर लिया है। 'पद्मावत' की कथा भी एक ऐसी ही लोकप्रिय कहानी है। लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारत में यह कहानी कई ढंग से कही जाती है। कहीं तो अपनी राजधानी की लाज बचाने में अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीर शिरोमणि गोरा और बादल की कहानी के रूप में यह कथा कही जाती है और कहीं अलाउद्दीन जैसे तुर्क बादशाह से अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिये जौहर रचाने वाली वीर क्षत्राणी 'पद्मावती' के नाम से यह कथा

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० ६८-७१।

प्रसिद्ध है। अवध के गाँवों में इस कहानी का जो रूप प्रचलित है वह तो एकदम लौकिक है और पद्मिनी और हीरामन सुए की कहानी के रूप में जाना जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि जायसी के समय में पद्मावती की कहानी के ये विविध रूप काफ़ी प्रचलित थे। पद्मावत-कार ने इन सारी लोक-कहानियों को एकत्रित करके इन्हें एक सूत्र में बाँधा है और अपनी कथावस्तु तैयार की है।

(४) पद्मावतकार द्वारा कहानी के लोकरूप की स्वीकृति

भारतीय सूफ़ी कवियों की यह विशेषता थी कि वे लोक जीवन में प्रचलित प्राचीन कहानियों को लेकर उसे अपने ढंग से कहा करते थे। वे जहाँ कहीं आवश्यकता समझते थे इन कथाओं के माध्यम से अपना आध्यात्मिक संदेश भी दे देते थे। कुतबन ने अपनी 'मृगावती' में लिखा है कि—'यह कथा पहले से ही चली आ रही थी, इसमें योग, शृङ्गार और विरह रस वर्तमान था। मैंने दुबारा फिर उसी कथा को लिखा है।' लेकिन कुतबन का यह दावा अवश्य है कि उन्होंने इस कथा के अर्थ को एक नया परिधान दिया है—

पुनि हम खोलि अरथ सब कहा।[1]

ठीक इसी प्रकार पद्मावतकार ने भी अपने 'स्तुति खंड' के अन्त में इस बात की ओर संकेत किया है कि यह कहानी उसकी निजी कल्पना की उपज नहीं है, वरन उसने आदि से अन्त तक कथा को जिस रूप में पाया है उसी रूप में लिख दिया है—

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० २६२।

कवि इतिहास प्रसिद्ध पात्र को भी निजंधरी कथानकों की ऊँचाई तक ले जाना चाहता है।"[1]

'पद्मावत' की कथा भी एक ऐसी ही कवि-गृहीत लोक-कथा है, जिसके कुछ नाम और कुछ घटनाएँ मात्र (उत्तरार्ध की) ऐतिहासिक हैं। कुल मिला कर यह काव्य लोकाख्यानक काव्यों से भिन्न नहीं है।

(३) कहानी का लोकप्रिय रूप

इस देश में वीर-पूजा और सती-पूजा की प्रथा बड़ी पुरानी है। यहाँ की धरती पर जितने भी लोक-रक्षक और मर्यादा-पालक व्यक्तित्व अवतरित हुए हैं—भारतीय इतिहास और समाज ने उन्हें अपनी पूज्य श्रद्धा का पात्र बना लिया है। उन राष्ट्र वीरों की जीवन गाथाएँ लोक-कण्ठ में कहानी बन गई हैं और लोक-जीवन उन्हें कह सुनकर आदर्श जीवन की प्रेरणा प्राप्त करता आ रहा है। इसी प्रकार जिन विदुषी देवियों ने पत्नी-जीवन की आन निभाई है और जिन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा में प्राणों की बाजी लगा दी है, लोक-जीवन ने उन्हें भी अपनी पूजा और श्रद्धा समर्पित करके, उनके जीवन-कृत्यों को अपनी मौखिक कथाओं के अमर कोश में सुरक्षित कर लिया है। 'पद्मावत' की कथा भी एक ऐसी ही लोकप्रिय कहानी है। लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारत में यह कहानी कई ढंग से कही जाती है। कहीं तो अपनी राजधानी की लाज बचाने में अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीर शिरोमणि गोरा और बादल की कहानी के रूप में यह कथा कही जाती है और कहीं अलाउद्दीन जैसे तुर्क बादशाह से अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिये जौहर रचाने वाली वीर क्षत्राणी 'पद्मावती' के नाम से यह कथा

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० ६८-७१।

प्रसिद्ध है। अवध के गाँवों में इस कहानी का जो रूप प्रचलित है वह तो एकदम लौकिक है और पद्मिनी और हीरामन सुए की कहानी के रूप में जाना जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि जायसी के समय में पद्मावती की कहानी के ये विविध रूप काफी प्रचलित थे। पद्मावत-कार ने इन सारी लोक-कहानियों को एकत्रित करके इन्हें एक सूत्र में बाँधा है और अपनी कथावस्तु तैयार की है।

(४) पद्मावतकार द्वारा कहानी के लोकरूप की स्वीकृति

भारतीय सूफ़ी कवियों की यह विशेषता थी कि वे लोक जीवन में प्रचलित प्राचीन कहानियों को लेकर उसे अपने ढंग से कहा करते थे। वे जहाँ कहीं आवश्यकता समझते थे इन कथाओं के माध्यम से अपना आध्यात्मिक संदेश भी दे देते थे। कुतबन ने अपनी 'मृगावती' में लिखा है कि—'यह कथा पहले से ही चली आ रही थी, इसमें योग, शृङ्गार और विरह रस वर्तमान था। मैंने दुबारा फिर उसी कथा को लिखा है।' लेकिन कुतबन का यह दावा अवश्य है कि उन्होंने इस कथा के अर्थ को एक नया परिधान दिया है—

पुनि हम खोलि अरथ सब कहा।[1]

ठीक इसी प्रकार पद्मावतकार ने भी अपने 'स्तुति खंड' के अन्त में इस बात की ओर संकेत किया है कि यह कहानी उसकी निजी कल्पना की उपज नहीं है, वरन उसने आदि से अन्त तक कथा को जिस रूप में पाया है उसी रूप में लिख दिया है—

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० २६२।

सिंहल दीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी॥
अलाउद्दीन देहली सुलतानू। राघौ चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ़ छेंका आई। हिन्दू तुरुकन्ह भई लराई॥
आदि अन्त जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै॥[1]

प्रस्तुत उद्धरण की अन्तिम चौपाई ध्यान देने योग्य है। इसका अर्थ है—

"आदि से अन्त तक कहानी जैसी रही है उसको (कवि ने) भाषा चौपाई में बाँध कर पाठक के सम्मुख उपस्थित किया है।"

आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय के अनुसार कवि ने यह दावा भी किया है कि यह कथा बड़ी पुरानी और रस पूर्ण थी एवं पहले पहल उसी ने इसे काव्य का रूप दिया। अपने इस कथन को पाण्डेय जी ने 'पद्मावत' के निम्नलिखित उद्धरण के आधार पर कहा है—

कवि बियास कंवला रसपूरी। दूरि सो नियर, नियर सो दूरी॥
नियरे दूर, फूल जस काँटा। दूरि जो नियरे जस गुड़ चाँटा॥
भँवर आह बन खंड सन, लेइ कँवल कै बास।
दादुर बास न पावइ, भलहि जो आछै पास॥[2]

प्रस्तुत उद्धरण का तात्पर्य पाण्डेय जी के शब्दों में इस प्रकार है—

"कवि इसके द्वारा यह व्यक्त करना चाहता है कि यहाँ कवि भी एक से एक बढ़कर हुए हैं और यह कथा भी रस से भरी पड़ी है, फिर भी कवि से न बन पड़ा कि इस कथा को काव्य का रूप दे। यह कार्य तो मुझ जैसे अहिन्दू से बन पड़ा।"[3]

---

१. जायसी ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ६।
२. वही।
३. आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय, हिन्दी कवि चर्चा, पृ० १३४।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि 'पद्मावत' की कहानी जायसी की मौलिक सूझ नहीं है। वरन् यह कथा उनके समय में लोक जीवन में काफ़ी प्रचलित थी और उन्होंने इसे वहीं से ग्रहण किया।

(५) कथानक का तुलनात्मक विवेचन

(अ) पद्मावत की कथा—

सिंहलदीप के राजा गन्धर्वसेन की पुत्री पद्मावती अत्यन्त रूपवती थी। उसके पास उसका पालित एक शुक था—जिसका नाम था हीरामन। एक दिन पद्मावती ने उससे अपने विवाह के लिये एक योग्य वर की चर्चा चलाई। हीरामन उसके लिये सुन्दर वर की तालाश में उड़ गया।[1] वह एक बहेलिये द्वारा पकड़ा गया और बहेलिये ने उसे सिंहल की हाट में आये हुए चित्तौड़ के एक ब्राह्मण व्यापारी के हांथ बेच दिया। ब्राह्मण उसे लेकर अपने देश आया और वह पक्षी अपने पांडित्य के कारण राजा रत्नसेन द्वारा पुनः खरीद लिया गया।

एक दिन रत्नसेन की अनुपस्थिति में उसकी रूप-गर्विता रानी नागमती ने हीरामन से पूछा—"हे शुक! क्या संसार में मुझसे अधिक सुन्दर और कोई स्त्री है?" हीरामन ने उत्तर दिया—"रानी! यदि

---

१. लोक-गीतों में भी शुक कन्या के लिये वर ढूँढने जाता है। एक गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार मिलती हैं—

सावन सुगना मैं गुर घिउ पालेऊँ, चैत चना के दाल।
अब सुगना तू भयेउ सुजोगवा, बेटी के वर हेरै जाव॥

तुम पूछती ही हो तो सच तो यह है कि सिंहल की पद्मिनी स्त्रियों के आगे तुम्हारा सौंदर्य अत्यन्त तुच्छ है।" नागमती यह सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हुई और किसी भावी सौत की चिन्ता ने उसे आकुल कर दिया। उसने अपनी एक दासी से हीरामन को ले जाकर मार डालने के लिये कहा, किन्तु दासी ने राजा के भय से शुक को छिपाकर रख दिया।

जब रत्नसेन ने हीरामन की खोज की और वह दासी द्वारा उसके सम्मुख लाया गया तो उसने राजा से सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दिया। फिर रत्नसेन ने उससे सिंहल की राजकुमारी पद्मावती का रूप वर्णन करने को कहा। हीरामन ने पद्मावती के 'पारस-रूप' का नख-शिख वर्णन किया और इसे सुनकर राजा मूर्छित हो गया। होश आने पर, उसने पद्मावती की प्राप्ति के लिये जोगी बन कर सिंहल की राह ली और हीरामन उसका अगुआ बना।

प्रेम पंथ की अनेक कठिनाइयों को झेलता हुआ रत्नसेन सिंहल पहुँचा। उसके साथ १६ हज़ार राजकुमार योगी और भी थे। हीरामन की मध्यस्थता से वसंत पंचमी के दिन शिव मन्दिर में पद्मावती और रत्नसेन का प्रथम दर्शन हुआ। इस बार रत्नसेन उस रूपवती के सौंदर्य पुञ्ज के सम्मुख फिर मूर्छित हो गया। पद्मावती ने उसके शरीर पर चंदन से लिखा कि—"जोगी! तेरा जोग अधूरा है। जब भिक्षा लेने का समय आया तब तू सो गया।" इतना लिख कर पद्मावती अपने महल को वापस लौट आई।

जब रत्नसेन की चेतना लौटी तब वह पद्मावती के लिये विलाप करने लगा और चिता में जल कर भस्म होने की तैयारी करने लगा इसी बीच गौरा-पार्वती और महादेव कोढ़ी कोढ़िन का वेश बना कर आ पहुँचे। पार्वती ने उसके जलने का कारण पूछा, उसके प्रेम की परीक्षा ली और महादेव ने उसे एक 'सिद्धि गुटका' दी।

महादेव का आशीर्वाद पाकर रत्नसेन ने अपने साथियों के साथ सिंहलगढ़ पर आक्रमण कर दिया। वह पकड़ा गया और पद्मावती के पिता गन्धर्वसेन ने उसे फाँसी की आज्ञा दी। पार्वती और महादेव पुनः भांट-भांटिन के रूप में प्रगट हुए। महादेव ने गंधर्वसेन को सब बात विस्तृत रूप से समझायी। राजा ने उन्हें पहचान लिया और उनके चरणों पर गिर कर क्षमा माँगी। हीरामन ने रत्नसेन के राज-व्यक्तित्व का परिचय दिया। फिर बड़े धूमधाम से रत्नसेन और पद्मावती का विवाह हुआ। रत्नसेन के १६ हज़ार योगी साथियों को भी एक-एक पद्मिनियाँ मिलीं। वे रत्नसेन के साथ वहीं सिंहल में सुख पूर्वक रहने लगे।

इधर चित्तौड़ में रत्नसेन की नागमती रानी के दिन बड़े दुख से कट रहे थे। एक दिन एक पंछी ने आधीरात को उसका विलाप सुना और उसका संदेशा लेकर सिंहल आया। उसने शिकार के समय एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए रत्नसेन को नागमती की याद दिलाई और उसका संदेश दिया। अब रत्नसेन को अपने देश और कुल परिवार की याद आई। वह गंधर्वसेन से आज्ञा लेकर पद्मावती के साथ चित्तौर को लौट पड़ा।

जब रत्नसेन का जहाज़ी बेड़ा सागर की उत्ताल तरंगों पर झूमता हुआ चला जा रहा था तभी बड़ी ज़ोर का तूफ़ान आया। इसी बीच एक राक्षस के कुचक्र से सभी जहाज़ सागर की अतल गहराइयों में डूब गये। रत्नसेन बह कर एक घाट लगा और पद्मावती दूसरे घाट। इस अवसर पर समुद्र की कन्या लक्ष्मी ने इन लोगों की सहायता की। इनका पुनर्मिलन हुआ। समुद्र ने रत्नसेन को पाँच अमूल्य पदार्थ और बहुत से रत्न भेंट किये। समुद्र की सहायता से रत्नसेन के अन्य डूबे हुए साथी भी एकत्रित हो गये। यात्रा फिर आरम्भ हुई।

बहुत दिनों बाद रत्नसेन अपने देश चित्तौड़ पहुँचा। नागमती की फुलवारी फिर से हरी भरी हो गई। सब लोग सुख पूर्वक राजपाट करने

लगे। कालान्तर में नागमती ने नागसेन और पद्मावती ने कमलसेन नामक पुत्र-रत्नों को जन्म दिया।

रत्नसेन के दरबार में राघवचेतन नामक एक यक्षिणी-सिद्ध पंडित रहता था। उसने एक दिन परिवा के चाँद को दूइज के चाँद के रूप में दिखला दिया। इस वेद विरुद्ध आचार के अपराध में राजा ने उसे देश निकाले का दण्ड दिया। पद्मावती को यह बात अच्छी न लगी। उसने राघव को प्रसन्न करने के लिये उसे अपना जड़ाऊ कंगन दिया। किन्तु राघव चेतन राजा द्वारा अपना अपमान न सह सका। उसने दिल्ली की राह ली।

दिल्ली पहुँच कर राघव चेतन ने अलाउद्दीन को पद्मावती का जड़ाऊ कंगन भेंट किया और उसके सम्मुख पद्मावती के सौंदर्य का मोहक वर्णन किया। अलाउद्दीन ने रत्नसेन से पद्मावती की माँग की। किन्तु, राजपूत राजा ने इस अपमान जनक प्रस्ताव को ठुकरा दिया। परिणाम स्वरूप अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। आठ वर्ष तक घमासान युद्ध होता रहा। अन्त में अलाउद्दीन ने संधि का प्रस्ताव भेजा। रत्नसेन ने उसे स्वीकार कर लिया और बादशाह को अपने गढ़ में भोज का निमंत्रण दिया। भोज के पश्चात् शतरंज खेलते समय शाह ने अचानक एक भित्ति-दर्पण में पद्मावती का प्रतिबिम्ब देख लिया। वह बेहोश हो गया। किन्तु, राघव चेतन ने अपनी चतुराई से परि-स्थिति सम्हाल ली।

भोज के पश्चात् जब अलाउद्दीन गढ़ से बाहर लौट रहा था उसके सिपाहियों ने छल से रत्नसेन को बन्दी बना लिया। अलाउद्दीन उसे अपने साथ दिल्ली लाया। राजा के बन्दी हो जाने के पश्चात् सारे चित्तौड़ में कुहराम मच गया। विपत्ति की मारी पद्मावती सहायता के लिये राजपूत सरदार गोरा और बादल के पास गई। इन वीरों ने अपनी जातीय मर्यादा के अनुसार अबला की रक्षा का बीड़ा उठा लिया।

बरछी, भाला और कटार से लैस राजपूतों को बैठाकर सोलह सौ पालकियाँ सजाई गयीं। कहा गया कि पद्मावती अलाउद्दीन से मिलने जा रही है। गोरा और बादल के नेतृत्व में पालकियाँ दिल्ली पहुँचीं। अलाउद्दीन से कहा गया कि आपकी रानी बनने से पूर्व पद्मावती रत्नसेन से मिलना चाहती है। अलाउद्दीन ने आज्ञा दे दी। एक पालकी रत्नसेन से मिलने गई। उसमें बैठे हुए लोहार ने उसकी हथकड़ी बेड़ी काट दी और वह बादल के साथ घोड़े पर सवार होकर चित्तौड़ की ओर चल पड़ा। अलाउद्दीन की सेना से लड़ते समय गोरा मारा गया।

इधर चित्तौड़ लौट आने पर रत्नसेन ने कुंभलनेर के राजा देवपाल से युद्ध ठान दिया। इस युद्ध में रत्नसेन मारा गया। पद्मावती और नागमती दोनों रानियाँ सती हो गयीं। अलाउद्दीन ने जब दुबारा चित्तौड़ पर आक्रमण किया तो उसकी जीत हुई। किन्तु उसके हाथ में जौहर की राख भर आई--

छार उठाइ लीन्हि एक मूठी।
दीन्हि उड़ाइ, पिरथिमी झूठी॥

(ब) पद्मावत कथा की तुलना—कुछ अन्य कहानियों से।

ऊपर 'पद्मावत' में व्यवहृत कथा का एक संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र शुक्ल का एक कथन उल्लेखनीय है—

"जायसी ने.....अपनी कहानी का रूप वही रक्खा है जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था। इस रूप में इस कहानी का पूर्वार्द्ध तो बिल्कुल कल्पित है और उत्तरार्ध ऐतिहासिक आधार पर है।"[1] हम पहिले इस कहानी के ऐतिहासिक रूप

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० १०२।

पर विचार कर चुके हैं और यह भी देख चुके हैं कि यह जायसी की अपनी मौलिक कहानी नहीं वरन् लोकगृहीत कहानी है। यहाँ हम इस कहानी की कुछ अन्य कहानियों से तुलना करेंगे और देखेंगे कि यह एक ही लोक-कथा किस प्रकार विभिन्न साहित्यिक कथाओं में थोड़ा बहुत परिवर्तन के साथ व्यवहृत हुई है।

(क) रासो का 'पद्मावती' समय और 'पद्मावत'

जायसी से पहले पद्मावती की लोक प्रचलित कहानी को लेकर कई साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत की जा चुकी थीं। इस सम्बन्ध में डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने अपनी 'मलिक मुहम्मद जायसी' नामक पुस्तक में रत्नसेन और पद्मावती की एक संस्कृत कथा का उल्लेख किया है। उन्हीं के शब्दों में—

"जायसी से पहले रत्नसेन और पद्मावती की कहानी १४६७ विक्रम में पाठक राज वल्लभ ने संस्कृत में लिखी थी।"[1] पृथ्वीराज रासो के 'पद्मावती समय' में भी यह कथा[2] विस्तार के साथ आई है। 'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध की कहानी और इस रासो कथा में अद्भुत साम्य है। ठीक 'पद्मावत' की कहानी की भांति ही यहाँ भी पद्मावती समुद्र शिखर अथवा शिपरगढ़ (यह नाम 'पद्मावत' के सिंहल गढ़ से बहुत कुछ मिलता जुलता है) के राजा की रूपवती कन्या है। उसका पालित शुक 'पद्मावत' के हीरामन की भांति पृथ्वीराज के पास उसके प्रेम का सन्देश ले जाता है। पृथ्वीराज इस सन्देश को पाकर शिखर गढ़ पहुँचता है और भवानी मन्दिर में दर्शन के बहाने आई हुई

---

१. डाक्टर कमल कुलश्रेष्ठ, मलिक मुहम्मद जायसी (भाग १) पृ० १३७-३८।

२. बाबू रामनारायन, पृथ्वीराज चरित्र–'पद्मावती समय'।

पद्मावती को अपने घोड़े पर बैठाकर दिल्ली भाग जाता है। 'पद्मावत' में रत्नसेन, पद्मावती को लेकर इस प्रकार भाग तो नहीं जाता किन्तु वह उससे प्रथम बार भवानी मन्दिर में ही मिलता है। कुल मिलाकर देखने से इन दोनों कहानियों का ढाँचा एक जैसा ज्ञात होता है। 'पृथ्वीराज रासो' 'पद्मावत' से बहुत पहले की रचना है। किन्तु, इसका तात्पर्य यह नहीं कि जायसी ने अपनी कथा रासो से उधार लिया है और थोड़ा बहुत नामों तथा घटनाओं का उलट फेर कर दिया है। 'रासो' और 'पद्मावत' की कथाओं में इस समानता का मूल कारण यह है कि इन दोनों कहानियों का स्रोत एक ही लोक-कण्ठ है। इस सम्बन्ध में पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कथन महत्वपूर्ण है—

"इसमें तनिक सन्देह नहीं कि पद्मावती की वही लोक प्रचलित कथा रासो में भी ग्रहण की गई है जो जायसी के काव्य का आधार है।"[1]

(ख) 'ढोला मारू' की कथा और 'पद्मावत'

इन दोनों कहानियों में भी बहुत कुछ सादृश्य है। जिस प्रकार पद्मावत का हीरामन शुक प्रेम पंथ का अगुआ बना है, उसी प्रकार 'ढोला मारू' की कहानी में भी एक शुक मालवणी के प्रेम व्यापार में सहायक बना है। पद्मावत की कथा में अलौकिक तत्वों के रूप में पार्वती और महादेव आये हैं। वे योगी योगिन का वेश धारण करके रत्नसेन को चिता में जलने से बचाते हैं। ठीक इसी प्रकार 'ढोला मारू' में भी एक योगी और योगिन आते हैं और मारवणी के विरह में, चिता में जल मरने को तैयार ढोला को बचाते हैं। इसी प्रकार सौतिया-डाह का दृश्य दोनों ही काव्यों में उपस्थित हुआ है। जिस प्रकार

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० २६१।

'पद्मावत' में नागमती और पद्मावती आपस में लड़ पड़ती हैं और फिर रत्नसेन उनका झगड़ा निपटाता है, ठीक उसी प्रकार ढोला मारू में भी मालवणी और मारवणी आपस में झगड़ती हैं और ढोला उनके इस कलह को समाप्त करता है। इसी प्रकार इन दोनों कहानियों में अन्य अनेक प्रकार की छोटी मोटी समानताएँ भी हैं। पं० परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में–

"जायसी की पदुमावती वाली प्रेम कथा एवं ढोला मारू रा दूहा की प्रेम कहानी में कई प्रकार की समानता दीख पड़ती है और जान पड़ता है कि एक ने दूसरे की रूपरेखा से कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठाया है।"[1]

ढोला मारू रा दूहा की कहानी राजस्थान की लोक कहानी है। उसमें 'पद्मावत' की कथा की उपर्युक्त समानताओं का पाया जाना यह सिद्ध करता है कि पद्मावतकार ने अपनी कथा निश्चित रूप से लोक जीवन से ली है।

(ग) 'सुपने को देसु' एक लोक कहानी[2] और 'पद्मावत'

'पदमावत' की कहानी अवध के गाँवों में तो ज्यों की त्यों पाई जाती है, साथ ही वह अन्य प्रान्तों के लोक जीवन में भी थोड़े बहुत रूपान्तर के साथ कही जाती है। ब्रज में ऐसी ही एक लोक-कथा 'सुपने को देसु' नाम से प्रसिद्ध है। इस कहानी में शुक से स्थान पर हंस, प्रेम सम्बन्ध घटक और पथ प्रदर्शक के रूप में आता है। यहाँ

---

१. पं० परशुराम चतुर्वेदी, 'हिन्दी काव्य धारा में प्रेम प्रवाह', पृ० ५५।

२. 'सेठ कन्हैया लाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ' में संकलित, पृ० १०१५।

भी राजकुमारी सात सागर पार की सुन्दरी कन्या है। जिस प्रकार 'पद्मावत' की कहानी में रत्नसेन और पद्मावती का जहाज़ डूब जाता है वैसे ही इस कहानी में भी प्रेमी युगलों की जल-यात्रा के समय एक मछली के चपेटे से जहाज चूर हो जाता है। ये लोग बह कर दो भिन्न किनारों पर लगते हैं। कालान्तर में रत्नसेन और पद्मावती की तरह से इनका पुनर्मिलन हो जाता है।

(६) सम्पूर्ण कथानक का रूढ़-रूप

'पदमावत' की कथा अपने मूल रूप में इस देश की एक बड़ी पुरानी कहानी है। किसी राजकन्या का, किसी पंछी द्वारा किसी राज-पुत्र के पास प्रणय सन्देश भेजना, परिणाम स्वरूप नाना प्रकार के प्रेम व्यापारों का आगे बढ़ना और अन्त में दोनों का विवाह हो जाना--कहानी का यह सारा का सारा ढाँचा (फ्रेम) लोक जीवन की कथाओं का अत्यन्त प्रिय परिधान रहा है। इस ढंग की कहानियाँ भारतीय वाङ्मय में भी संस्कृत काल से ही मिलने लगती हैं। 'कथा-सरित-सागर' की उदयन और पदमावती वाली कहानी का विकास मूलतः इसी लोक कथा पर आधारित है। 'पृथ्वीराज रासो' के 'पदमावती समय' में भी यही कथा थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ आई है। डा० सत्येन्द्र के शब्दों में—"इस प्रेम कथा का मूल स्वरूप वस्तुतः 'नल कथा' में भी उपलब्ध है, जहाँ नल के पास हंस आकर दमयन्ती के प्रति प्रेम और उसे प्राप्त करने की चेष्टा उत्पन्न कर देता है।"[१] 'पद्मावत' में इसी कहानी का अत्यन्त विकसित रूप मिलता है। इस प्रकार हम

---

१. डा० सत्येन्द्र, आलोचना (पत्रिका) भाग ४, पृ० ३५।

देखते हैं कि भारतीय लोक जीवन की यह प्रिय कहानी संस्कृत काल से (लगभग १००० वर्षों से) ही हमारे साहित्य में अनेक रूप धारण करके व्यवहृत होती आई है। इस दृष्टि से 'पदमावत' की कहानी अपने मौलिक रूप में एक रूढ़ कथा है।

(७) कथानक के प्रमुख उपादान

इस दृष्टि से 'पद्मावत' की प्रमुम घटनाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) रूढ़िगत घटनाएँ
(२) ऐतिहासिक घटनाएँ
(३) कवि कल्पित घटनाएँ

रूढ़िगत घटनाएँ लोक कथाओं की सामान्य घटनाएँ हैं। इनमें से एक-एक घटना कथानक के लौकिक उपादान के रूप में विचारणीय है। ये घटनायें साहित्य में आकर रूढ़ि बन गई हैं और इन्हें कथानक रूढ़ि कहा जाता है। पद्मावत की ऐसी लोक-कथाओं वाली रूढ़िगत घटनायें इस क्रम से हैं—

(क) पद्मिनी स्त्रियों के किसी देश 'सिंहलदीप' की राजकुमारी का युवा होना और अपने पालित पक्षी से अपनी काम-व्यथा कहना।

(ख) पक्षी (हीरामन शुक) का किसी बहेलिये द्वारा पकड़ा जाना और फिर किसी व्यापारी द्वारा खरीद लिये जाने के बाद किसी राजा के यहाँ पहुँचना।

(ग) राजा (रत्नसेन) की रानी (नागमती) का किसी भावी सौत की चिन्ता से उस पक्षी को मरवा डालने का असफल प्रयास करना।

(घ) पक्षी का राजा से अपनी राजकुमारी के सौन्दर्य का निवेदन करना और उसके मन में आकर्षण-जन्य प्रेम उत्पन्न करना।

(ङ) प्रेमी राजा का अपनी प्रिया को प्राप्त करने के लिये जोगी हो जाना और उसके देश पहुँचना।

(च) वहाँ किसी पूर्व निश्चित स्थान (शिव मन्दिर) में प्रेमी और प्रेमिका का प्रथम मिलन।

(छ) प्रेमी राजा का अपनी प्रिया के विरह-दुःख में आत्महत्या करने का प्रयत्न करना और इस अवसर पर किसी योगी-योगिन (पार्वती महादेव) का पहुँच कर उसका प्राण रक्षा करना।

(ज) नायक (रत्नसेन) द्वारा नायिका की प्राप्ति के लिये कठिन प्रयत्न करना, सफल होना और विवाहोपरान्त सुख पूर्वक रहने लगना।

(झ) नायक की पहली विवाहिता रानी (नागमती) का विरह और उसके द्वारा किसी पंछी के माध्यम से अपने पति के पास सन्देश भेजना।

(ट) नायक का अपनी नवीन प्रिया को साथ लेकर अपने देश (चित्तौड़) लौटना।

(ठ) मार्ग में तूफान आना, जहाज़ का टूट जाना और प्रिय एवं प्रिया में पुनर्विछोह।

(ड) कुछ अलौकिक शक्तियों की कृपा और सहायता से उनका मिलना और अपने देश लौट आना।

पद्मावत की कहानी के ये ही प्रमुख लोक-उपादान हैं। इनमें से हर एक अपने में एक स्वतन्त्र कथानक रूढ़ि है। इस दृष्टि से यहाँ इनका

(८) कथानक रूढ़ियाँ (मोटिफ्स)

विभिन्न लोक-कथाओं में कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ पाई जाती हैं जिनके कारण वे एक ही सांचे में ढली जान पड़ती हैं। इन कहानियों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि कथानक को विस्तार एवं निश्चित दिशा देने के लिये कथाकारों ने कुछ ऐसी सामान्य घटना-परक रूढ़ियों का सहारा लिया है जिन्हें कथानक का विस्तार-बिन्दु कहा जा सकता है। उदाहरण के लिये हम अवध के गाँवों में प्रचलित कुछ कहानियों में किसी राजकुमार के घोड़े की मार्ग भूल जाने वाली बात को लें। कहीं तो ये घोड़े रास्ता भूल कर अपने स्वामी को किसी ऐसे निर्जन स्थान में पहुँचा देते हैं जहाँ कोई सुन्दरी राजकुमारी मिल जाती है और फिर इनकी प्रेम-कथा आरम्भ होती है और कहीं कोई घोड़ा भूलता भटकता किसी ऐसे स्थान में पहुँच जाता है जहाँ उसके स्वामी पर नाना प्रकार की विपत्तियाँ पड़ जाती हैं और वह उनका सामना करता हुआ अपनी वीरता का प्रदर्शन करता है। इसी प्रकार कुछ कथाओं में घोड़ा राह भूल कर किसी ऐसे निर्जन स्थान में पहुँच जाता है जहाँ उसके स्वामी को किसी संकेत द्वारा यह ज्ञात होता है कि यहाँ ज़मीन में अतुलित धनराशि गड़ी हुई है और फिर वह उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार इन सारी कहानियों में घोड़े का मार्ग भूल जाना एक ऐसी सामान्य घटना है जो इन कथाओं के बाह्य आकार को एक-रूपता प्रदान करके उनमें एक सा आभिप्राय ला देती है। जिसे हम इन कहानियों का मोड़ बिन्दु (टर्निङ्ग प्वाइंट) कह सकते हैं। इनकी सहायता से कथानक का विकास तो हुआ ही है, साथ ही उसे निश्चित दिशा भी दी गई है।

कथानक को विकास एवं दिशा देने वाली इन सामान्य घटना-परक विशेषताओं को अंग्रेज़ी विद्वानों ने 'मोटिफ़' नाम दिया है। हिन्दी में कुछ लोगों ने इन्हें कथा परिधान या कथा रूप कहा है किन्तु ये शब्द

उपयुक्त नहीं। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' नामक ग्रंथ में इन्हें 'कथानक-रूढ़ियाँ' कहा है। 'मोटिफ़' के लिये किसी अन्य उपयुक्त हिन्दी शब्द के अभाव में हम इसी शब्द का व्यवहार करेंगे।

प्राचीन भारतीय लोक-कथाओं एवं उनसे प्रभावित अनेक कथा-काव्यों में कथानक रूढ़ियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। ये कथानक रूढ़ियाँ भारतीय प्रेम-काव्यों में तो पाई ही जाती हैं, साथ ही यूनानी एवं अन्य पाश्चात्य काव्यों में भी इनका बाहुल्य है।[1] इनके द्वारा कथानक को अभिलषित ढंग से मोड़ तो दिया ही गया है, साथ ही उसे सरस और प्रवाहमय बनाने का भी प्रयत्न किया गया है। पश्चिमी अपभ्रंश के ऐहिकतामूलक साहित्य में ये कथानक-रूढ़ियाँ विशेष रूप से व्यवहृत हुई हैं और बहुत लोकप्रिय रही हैं। हिन्दी साहित्य के अनेक आदिकालीन रासो काव्यों एवं भक्तिकालीन सूफ़ी काव्यों तथा अन्य हिन्दू रोमांसों में भी नाना प्रकार की कथानक-रूढ़ियों का व्यवहार किया गया है। हिन्दी आख्यानकों में प्रयुक्त इन कथानक-रूढ़ियों का अध्ययन अपभ्रंश साहित्य की पूर्व-पीठिका पर बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। इस दृष्टि से हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्यों एवं अपभ्रंश के चरित काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

---

1. We find both in Indian and in Greek romance the conception of love at first sight, of lovers revealed to each other in a dream, the swift change of fortune from good to evil and then back to prosperity, adventure and ship-wreck at sea, heroes as well as heroines of wonderful beauty, free use of detailed description both of love and nature."

   A. B. Keith : A History of Sanskrit Literature, p. 365.

श्री रामसिंह तोमर ने विस्तार पूर्वक किया है।[1] उन्होंने सूफियों के पदुमावती, मधुमालती, मृगावती आदि प्रेमाख्यानक काव्यों एवं अपभ्रंश के भविसयत्त कथा, जसहर चरिउ और करकंडु चरिउ आदि चरित काव्यों के तुलनात्मक विवेचन के आधार पर बहुत सी सामान्य रूढ़ियाँ खोज निकाली हैं–

(१) इन दोनों प्रकार के काव्यों में एक प्रेम कथा की प्रधानता होती है।

(२) प्रेम का प्रारम्भ चित्र-दर्शन अथवा रूप-गुण श्रवण आदि से होना है।

(३) नायिका की प्राप्ति के लिये नायक का थोड़ा बहुत प्रयत्न और बीच में कुछ बाधाओं का समावेश।

(४) लौकिक कथाओं द्वारा पारलौकिक संकेत।

(५) सिंहल यात्रा अथवा किसी सामुद्रिक यात्रा की योजना।

(६) राक्षस, अप्सरा आदि अलौकिक शक्तियों के योग द्वारा कथा में आश्चर्य तत्व का मिश्रण, आदि।

ऊपर जिन थोड़ी सी रूढ़ियों की चर्चा आई है वैसी ही अनेक कथानक रूढ़ियाँ भारतीय कथा साहित्य में संजोई हुई मिलती हैं। इन कथानक रूढ़ियों का अध्ययन श्री ब्लूम फील्ड[2] एवं पेन्जर[3] आदि पाश्चात्य विद्वानों ने बड़े विस्तार से किया है। हिन्दी में इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का है। अपने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' नामक ग्रंथ में आपने कुछ भारतीय

---

१. विश्वभारती, खंड ५, अंक २, अप्रैल–जून, १९४६।

२. जे० ए० ओ० एस०––खण्ड ३६, ४०, ४१।

३. कथा सरित् सागर–अंग्रेज़ी अनुवाद, नवीन संस्करण, पादटिप्पणी।

कथानक रूढ़ियों पर प्रकाश डाला है। आपके अनुसार कुछ रूढ़ियाँ ये हैं—[1]

(१) कहानी कहने वाला सुग्गा

(२) स्वप्न में प्रिय के दर्शन पाकर आसक्त होना
चित्र दर्शन द्वारा किसी पर मोहित होना
गुण श्रवण द्वारा प्रेम का अंकुरित होना

(३) मुनि का शाप देना

(४) रूप परिवर्तन

(५) लिंग परिवर्तन

(६) परकाय प्रवेश

(७) आकाश वाणी

(८) अभिशान या सहिदानी

(९) परिचारिका का राजा से प्रेम और अन्त में उसका राज-कन्या और रानी की बहन के रूप में अभिशान

(१०) नायक का औदार्य

(११) षट्ऋतु और बारहमासा के माध्यम से विरह वर्णन

(१२) शुक, हँस, कपोत आदि से संदेश भेजना

(१३) किसी राजकुमार के घोड़े का मार्ग भूल जाना

(१४) विजन वन में सुन्दरियों का साक्षात्कार

(१५) नाना प्रकार की आपत्तियों में फँसी हुई किसी सुन्दरी का उद्धार करना और फिर प्रेम व्यापार

---

१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—पृ० ७४-७५।

(१६) गणिका द्वारा दरिद्र नायक का स्वीकार और फिर गणिका माता का तिरस्कार

(१७) गरुड़ आदि के द्वारा प्रिय युगलों का स्थानान्तरण

(१८) पिपासा और जल की खोज में जाते समय असुर दर्शन और प्रिया वियोग

(१९) उजाड़ नगर का मिलना

(२०) प्रिया की दोहद कामना की पूर्ति में अनेक आश्चर्यजनक एवं असाध्य कार्यों का करना

(२१) शत्रु सन्तापित सरदार को उसकी प्रिया के साथ शरण देना और फलस्वरूप युद्ध इत्यादि

आचार्य द्विवेदी जी द्वारा दी हुई कथानक रूढ़ियों की इस सूची में कुछ अत्यन्त प्रचलित रूढ़ियाँ और जोड़ी जा सकती हैं—

(क) प्रतीकात्मक स्वप्नों द्वारा भावी दुर्घटना अथवा भावी मंगल की सूचना

(ख) मन्दिर से कन्या हरण अथवा किसी पुराने मन्दिर में नायक नायिका का मिलन

(ग) सागर में तूफ़ान आना और जहाज़ का टूटना

(घ) अपनी प्रिया को प्राप्त करने के लिये नायक का योगी हो जाना

(ङ) नायक नायिका की परीक्षा अथवा सहायता के लिये किसी योगी, योगिन अथवा पार्वती, महादेव का आना

(च) कथानक विस्तार के लिये मिलन के पश्चात अचानक वियोग

यहाँ कथानक रूढ़ियों की जो सूची दी गई है वह बहुत लम्बी हो सकती है। ऐसा न जाने कितनी ही विषय परक रूढ़ियाँ लोक-कथाओं

के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा खोजी जा सकती हैं। ये रूढ़ियाँ ऐसी हैं जो किसी लोक-कथा में कुछ मिलती हैं और किसी में कुछ। लोककंठ ने अपने अनुरंजन के लिये कहानियाँ गढ़ने में इन रूढ़ियों का प्रयोग नाना रूपों में किया है। लोक कथाओं से होती हुई ये कथानक रूढ़ियाँ अपभ्रंश के आख्यानक चरित काव्यों में प्रचुर मात्रा में आई हैं। लोक-कंठ की मौखिक परम्परा से ये हिन्दी आख्यानक काव्यों में भी समाविष्ट हुई हैं। जिन आख्यानक काव्यों में ये कथानक रूढ़ियाँ जितनी ही अधिक मात्रा में आई हैं उनका रूप उतना ही लौकिक हो गया है। इस दृष्टि से 'पृथ्वीराज-रासो' एवं 'पद्मावत' का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपादेय है। प्रस्तुत अध्ययन केवल 'पद्मावत' से सम्बन्धित है।

(६) 'पद्मावत' की कथानक रूढ़ियाँ

(क) सिंहलदीप

भारतीय कथाओं में सिंहलदीप में पद्मिनी स्त्रियों का पाया जाना एक कथानक रूढ़ि है। जायसी ने अपने सिंहलदीप वर्णन में पद्मिनीयों का उल्लेख किया है--

सिंहलदीप कथा अब गावौं।
औ सो पदमिनि बरनि सुनावौं॥
... ...
पानि भरै आवै पनि-हारी।
रूप सुरूप पदमिनी नारी॥

इसी कथानक रूढ़ि के आधार पर अनेक कथा काव्यों की नायिकाएँ सिंहलदीप की पद्मिनी नारी के रूप में चित्रित की गई हैं। कहीं-

कहीं इस सिंहलदीप को किसी स्त्री प्रधान देश के साथ मिला-जुला दिया गया है। श्री हर्षदेव ने अपनी 'रत्नावली' और कौतूहल कवि ने अपनी 'लीलावती' को एक स्त्री देश की राजकुमारी कहा है। परवर्ती नाथपंथी कहानियों में भी स्त्री देश और सिंहलदीप का अन्तर स्पष्ट नहीं हो पाता। एक बार गुरु मत्स्येन्द्रनाथ अपना महाज्ञान भूलकर एक स्त्री देश में जा फँसे थे। वे वहाँ भोग विलास में लिप्त हो गये थे और गोरखनाथ ने वहाँ जाकर उनका उद्धार किया था। 'मीन चेतन' और 'गोरक्ष विजय' में इस स्त्री देश को कदली देश कहा गया है। 'योगि-सम्प्रदाय विष्कृति' में इसे 'त्रिया देश' अर्थात् 'सिंहलदीप' कहा गया है।[1]

पद्मावतकार ने अपनी 'पद्मावती' को सिंहलदीप की बतलाया है। रत्नसेन उसे प्राप्त करने के लिये सात सागर पार करके वहाँ जाता है। कबीर भी अपने 'राम' को खोजने के लिये सिंहलदीप गये थे।

कबीर खोजी राम का, गया जु सिंहलदीप।
राम तो घटि भीतर रमि रह्या, जो आवै परतीत॥[2]

अपभ्रंश काव्य की नायिकाएँ भी सिंहलदीप की पद्मिनी स्त्री के रूप में चित्रित हुई हैं। 'पद्मावत' की सिंहल यात्रा की भांति ही 'करकंडु' में सिंहल यात्रा की योजना मिलती है।

पृथ्वीराज रासो के पद्मावती समय और पद्मावत की कहानियों की तुलना करते समय हम यह देख चुके हैं कि रासो में पद्मावती की जन्म-भूमि को समुद्र शिखर गढ़ कहा गया है। यहाँ पद्मावती को एक उत्तर

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० ५४।
२. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, कबीर ग्रन्थावली, ४।६६६, पृ० ८१।

देश की कन्या बताया गया है, और समुद्र यात्रा का वर्णन नहीं आया है। फिर भी समुद्र शिपर गढ़, के नाम से यह संकेत अवश्य मिल जाता है कि इस नगर का सम्बन्ध किसी समय समुद्र से रहा हो। हो सकता है कि रासो की यह पद्मावती कथा पद्मावत की रचना के बाद रासो में प्रक्षिप्त हुई हो और पद्मावत का सिंहलदीप जो सागर पार स्थित एक दक्षिण का देश है—यहाँ एक उत्तर स्थित नगर के रूप में आ गया हो।

कुछ विद्वान पद्मावत के सिंहलदीप को लंका मानते हैं। उनकी दृष्टि में रत्नसेन का सिंहलदीप जाना और पद्मावती को ब्याह करके लाना एक ऐतिहासिक सत्य है। रा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इस मत के समर्थक नहीं हैं। उनके विचार से सिंहलदीप राजपूताने के आसपास का कोई हिंगोली नामक स्थान है। "रत्नसेन लगभग एक वर्ष ही चित्तौड़ का राजा रहा, उसमें भी अन्तिम छः मास तो अला-उद्दीन से लड़ता ही रहा। ऐसी स्थिति में उसका सिंहल जाना, वहाँ एक वर्ष तक रहना और पद्मिनी को लेकर चित्तौड़ लौटना सर्वथा असम्भव है।.....रत्नसिंह के राज्य करने का जो अल्प समय निश्चित है उससे यही माना जा सकता है कि उसका विवाह सिंहलदीप अर्थात् लंका के राजा की पुत्री से नहीं किन्तु सिंगोली के सरदार की कन्या से हुआ हो।"[1]

आदरणीय ओझा जी का उपर्युक्त मत ऐतिहासिक अनुसंधान का विषय है। किन्तु जायसी ने अपने सिंहलदीप का वर्णन किसी ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर नहीं किया है। उन्हें इस बात से कुछ नहीं लेना देना था कि रत्नसेन अपने एक वर्ष के राज्य काल में सात सागर

---

१. नागरी प्रचारिणी (सभा) पत्रिका, जिल्द १३, सं० १९८९, 'पद्मावत का सिंहलदीप'।

पार करके सिंहलदीप जा ही नहीं सकता था। कवि तो संभावनाओं पर ज़ोर देता है। जायसी भारतीय कथानकों की सिंहलदीप वाली रूढ़ि से परिचित थे। 'पद्मावत' का सिंहलदीप और सिंहलदीप से सम्बन्धित कथानक का सारा तन्तु इसी रूढ़ि के आधार पर बुना गया है।

(ख) हीरामन शुक

शुक-शुकी, चकवा-चकई और हँस आदि पंछी इस देश की लोक-कथाओं के बड़े महत्वपूर्ण पात्र हैं। भारतीय जीवन की और इन पँछियों की मैत्र बड़ी पुरानी है।[1] इस देश की लोक प्रचलित अधिकांश कहानियों में इनका समावेश कई ढंग से किया गया है जिनमें तीन रूप विशेष उल्लेखनीय हैं।

(१) कथानक को विकास देने वाले प्रेम सम्बन्ध घटक या संदेश वाहक के रूप में

(२) कहानी कहने वाले वक्ता और श्रोता के रूप में

(३) कहानी के नाना रहस्यों का उद्घाटन करने वाले तथा भावी दुर्घटनाओं की सूचना देने वाले भविष्य वक्ता के रूप में

---

१. संस्कृत साहित्य में भी इनकी चर्चा जमकर हुई है। "जिन दिनों संस्कृत के काव्य नाटकों का निर्माण अपने पूरे चढ़ाव पर था, उन दिनों केलि-गृह और अन्तःपुर के प्रासाद प्रांगण से लेकर युद्ध क्षेत्र और वानप्रस्थों के आश्रम तक कोई न कोई पक्षी भारतीय सहृदय के साथ अवश्य रहता था। वह विनोद का साथी था, रहस्यालाप का दूत था, भविष्य के शुभाशुभ का द्रष्टा था, वियोग का सहारा था, संयोग का योजक था, युद्ध का सन्देश वाहक था और जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था, जहाँ वह मनुष्य का साथ न देता हो।" आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' पृ० सं० २८।४७।

जन जीवन में फैली हुई मौखिक कथाओं के विशाल कोश में इन सभी रूपों के पर्याप्त उदाहरण मिल जाते हैं। यहाँ हम केवल किसी पंछी के भविष्य वक्ता वाले रूप को लेते हैं। "अवध के कुछ गाँवों में 'रानी फुलवा और राजा चन्दन' की कहानी अत्यन्त प्रसिद्ध है। राजा चन्दन रानी फुलवा को व्याह करके अपनी राजधानी को लौटा जा रहा था। एक वृक्ष पर बैठे चकवा और चकई के जोड़े इस दृश्य को देख रहे थे। इतने में चकवे ने चकई से कहा कि हे चकई, राजा चन्दन और रानी फुलवा जब अपने महल के फाटक से गुजरने लगेंगे तब फाटक गिर जायेगा और ये दोनों दब कर मर जायेंगे। उसने यह भी कहा कि इस रहस्य को जो सुनता होगा और दूसरे से कहेगा वह पत्थर का हो जायेगा। सौभाग्य या दुर्भाग्यवश राजा चन्दन का एक अत्यन्त प्रिय मित्र इस बात को सुन रहा था। उसने अपने जीवन का मोह त्याग कर मार्ग में ही राजा चन्दन को यह सूचना दे दी और स्वयं पत्थर की प्रतिमा बन गया।" इसी प्रकार यह कहानी आगे बढ़ी है। इसमें हम कहानी में आने वाले किसी पंछी का वह रूप देखते हैं जो भावी दुर्घटनाओं की सूचना देता है। इसी प्रकार लोक-कहानियों में इनसे कई काम लिये गये हैं।

कथा-कहानियों में प्रयुक्त होने वाले पशु-पक्षियों से ये विभिन्न रूप साहित्य में आकर रूढ़ि बन गये हैं। प्राचीन काव्यों और आख्यानकों में इन रूढ़ियों का पर्याप्त सहारा लिया गया है। 'पद्मावत' में हीरामन शुक प्रेम सम्बन्ध घटक और संदेशवाहक के रूप में आया है। 'सुआ खण्ड', 'नागमती-सुआ संवाद खण्ड', 'राजा सुआ संवाद खण्ड' और 'पद्मावती सुआ भेंट खण्ड' में हीरामन की चर्चा विशेष रूप से आई है। एक बहेलिया हीरामन को पकड़ लेता है और सिंहल आये हुए एक ब्राह्मण व्यापारी के हाथ बेचता है। फिर वह व्यापारी उसे चित्तौड़ के राजा रत्नसेन के दरबार में पहुँचा देता है। वहाँ पहुँचकर हीरामन राजा से पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन करता है। इस प्रकार वह राजा

के मन में पद्मावती के प्रति आकर्षण और बाद में प्रेम उत्पन्न करता है तथा उसे लेकर सिंहलदीप जाता है और दोनों का मिलन कराने में सफल होता है। अवध के गाँवों में 'हीरामन और पद्मावती' की जो कहानी प्रचलित है ठीक उसी की भांति इस काव्य में भी हीरामन प्रेम सम्बन्ध घटक और संदेशवाहक के रूप में काम करता है। 'पद्मावत' के इस हीरामन शुक की कथा से मिलती जुलती एक अन्य हीरामन शुक की कथा बंगाल के लोक साहित्य में भी प्राप्त है। श्री लाल बिहारी डे ने अपने 'फ़ोक-टेल्स आव बंगाल' नामक ग्रंथ में इसका संकलन किया है। इस बंगाली कथा में भी एक बहेलिया ही शुक को राजा के हाथ बेंचता है। राजा की रानियाँ इसकी हत्या का असफल प्रयत्न करती हैं। अन्त में हीरामन राजा को लेकर 'सात समुद्र तेरह नदी पार' जाता है और वहाँ राजा एक सुन्दरी को प्राप्त करता है।

पद्मावत में जिस प्रकार प्रेम व्यापार को आगे बढ़ाने का कार्य हीरामन शुक करता है; नल दमयन्ती की कहानी में उसी प्रकार इस कार्य को एक हँस ने किया है। पृथ्वीराज रासो के पद्मावती समय में शुक संदेशवाहक के रूप में आता है। पद्मावत के हीरामन और इस शुक में सबसे बड़ा अन्तर यह है हीरामन-रत्नसेन से पद्मावती का संदेश और रूप वर्णन स्वयं करता है किन्तु रासो का शुक पद्मावती का पत्र लेकर पृथ्वीराज के पास जाता है। दूसरा अन्तर यह है कि हीरामन पहले रत्नसेन के मन में पद्मावती के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है बाद में सिंहल लौट कर पद्मावती से रत्नसेन का वर्णन करता है। किन्तु रासो में शुक पहले पद्मावती से ही पृथ्वीराज का रूप वर्णन करता है। इन दोनों ही कहानियों में शुक मनुष्य की बोली बोल और समझ लेता है तथा नायक नायिका का मिलन कराने में सफल होता है।

बनिजारा खण्ड—पद्मावतकार ने हीरामन शुक को सिंहल से चित्तौड़ पहुँचाने के लिये जिस कथा शैली को अपनाया है वह भी

वस्तुतः लोक-कथाओं पर आधारित है। इस सम्बन्ध में 'बनिजारा खण्ड' का प्रसंग उल्लेखनीय है। इस खण्ड के वर्णन से कथा में विकास तो हुआ ही है साथ ही साथ कथा को महत्वपूर्ण गति मिली है।

प्राचीन काल में व्यापारी एक स्थान से दूसरे स्थान को व्यापार के लिये जाया करते थे। यात्राएँ लम्बी होती थीं एवं गमनागमन के आधुनिक साधनों के अभाव में कष्टकर भी होती थीं। थल यात्राएं ऊँटों और घोड़ों पर एवं जल यात्राएँ बड़ी-बड़ी पालदार नावों के द्वारा की जाती थीं।

लगभग सभी देश की लोक-कथाओं में इस पुरानी प्रथा का उल्लेख मिलता है। फ़ारसी कथाओं में न जाने कितने ही प्रेम व्यापार रेगिस्तानी काफ़िलों में और नखलिस्तानी पड़ावों पर घटित हुए मिलते हैं।

जायसी ने इसी प्रकार की घटना को लेकर बनिजारा खण्ड की योजना की है—

चितउर गढ़ कर एक बनिजारा।
सिंघलदीप चला बैपारा॥
बाम्हन हुत एक निपट भिखारी।
सो पुनि चला चलत बैपारी॥

इसी ब्राह्मण ने हीरामन को—जो एक बहेलिये द्वारा पकड़ा जाकर बाज़ार में बेचा जाने को लाया गया था—ख़रीदा और चित्तौड़ ले गया—

बाम्हन सुवा बेसाहा सुनि मति बेद गरंथ।
मिला आइ के साथिन्ह, भा चितउर के पंथ॥

शुकः पंडित और शास्त्रज्ञ--ब्राह्मण द्वारा रत्नसेन के दरबार में उपस्थित किये जाने पर हीरामन ने अपना परिचय एक पंडित और शास्त्रज्ञ के रूप में दिया है। वैसे तो, साधारण जीवन में शुक मनुष्य की बोली के किसी रटे हुए अंश को बार-बार दुहराने का अभ्यासी हो जाता है किन्तु लोक कथाओं में वह मनुष्य की बोली बोलता है, मनुष्य की भाषा में विचारों का आदान प्रदान करता है और यहीं तक नहीं वह वेद-शास्त्र के पंडित के रूप में भी आता है। भारतीय कथाओं में शुक का यह सकल शास्त्रवेत्ता वाला रूप कई स्थानों में प्रकट हुआ है। सोमदेव के कथा सरित सागर में यह रूढ़ि कई रूपों में व्यवहरित हुई है। पाटली पुत्र के राजा 'विक्रम केशरी' के पास एक 'विदग्ध चूड़ामणि' नाम का शास्त्र पंडित शुक था। उसी की परामर्श से राजा ने मगधराज की कन्या चन्द्रप्रभा से अपना विवाह किया था।[1] जगद्गुरु शंकराचार्य को भी एक ऐसे ही शुक से पाला पड़ा था। कहा जाता है कि जब वे दिग्विजय करने की कामना मन में लिये प्रतिद्वन्दी मंडन मिश्र के यहाँ जा रहे थे तो एक दासी ने उन्हें बताया था--'भगवन्! जिसके द्वार पर पिंजरे में बैठा शुक 'स्वतः प्रमाणं' और 'परतः प्रमाणं' की विवेचना करता दिखलाई पड़े, उसे ही मंडन मिश्र का मकान जानिये।' जगद्गुरु जब मंडन मिश्र के द्वार पर पहुँचे, तो सचमुच उनका तोता ही शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दे रहा था--

"स्वतः प्रमाणं, परतः प्रमाणं, की रांगना यत्र गिरोगिरन्ति।"

ऊपर के विवेचन में हमने 'पद्मावत' की कहानी में प्रयुक्त किसी शुक के विभिन्न रूढ़िगत रूपों का अध्ययन किया है। इनके कारण कथानक का वह सारा भाग जो हीरामन शुक से सम्बन्धित है एकदम लौकिक जान पड़ता है। आचार्य पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में--

---

१. पेंजर; ओशन आफ़ द स्टोरी, भाग ६, चैप्टर ७, पृ० १८३, २६७।

"इस कथानक में इतिहास खोजने के लिये मूड़ मारना बेकार है। यह अत्यन्त प्रचलित लोक-कथा थी। इसे अमुक से चुराया है, कह कर पौराणिक कथा मानना भी उचित नहीं है। यह दीर्घकाल से प्रचलित भारतीय कथानक रूढ़ि है। दो या तीन स्थानों पर ही इसका उपयोग नहीं हुआ है, कई स्थानों पर हुआ है।"[1]

(ग) रूप श्रवण प्रेमोत्पत्ति

भारतीय कथाकारों ने अपनी कथाओं में नायिका के हृदय में नायक के प्रति और नायक के हृदय में नायिका के प्रति आकर्षण-जन्य प्रेम उत्पन्न कराने के लिये विभिन्न लोक रूढ़ियों का अवलम्बन लिया है। कभी तो यह प्रेम रूप-गुण-श्रवण से उत्पन्न कराया गया है और कभी चित्र दर्शन या प्रत्यक्ष दर्शन से, गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी मानस कथा में सीता और राम का प्रथम दर्शन जनक की पुष्प वाटिका में कराना आवश्यक समझा है। इस प्रथम दर्शन का मूल उद्देश्य भी राम के हृदय में सीता के प्रति आकर्षण और प्रेम उत्पन्न करना है—

कंकन किंकिन नूपुर धुन सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुँदुभी दीन्ही।
मनसा विस्व विजय करि लीन्हीं॥
अस कहि पुनि चितए तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥[2]

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', पृ० ७६।

२. 'मानस' बालकाण्ड, १–३, २३०।

मानसकार ने इस प्रथम दर्शन की योजना करके प्रेम के उस बीज को अंकुरित किया है जो आगे चलकर दाम्पत्य जीवन की घनी छांह वाले वृक्ष के रूप में पल्लवित और कुसुमित हुआ है।

पद्मावतकार ने यह कार्य रूप-श्रवण के माध्यम से सम्पन्न किया है। रत्नसेन के निवेदन करने पर हीरामन शुक पद्मावती के पारस-रूप का वर्णन करता है। यहीं पद्मावतकार को नख-शिख वर्णन का भी मौका मिला है जो इस देश के प्राचीन कवियों की चिर प्रचलित प्रथा है। हीरामन द्वारा पद्मावती का रूप वर्णन—

उअत सूर जस देखिय, चाँद छिपै तेहि धूप।
ऐसे सबै जाहिं छपि पदमावत के रूप॥[1]

... ...

का सिंगार ओहि बरनौ राजा।
ओहि का सिंगार ओही पै छाजा॥[2]

पृथ्वीराज रासो में रासोकार ने भी इस रूप श्रवण वाली रूढ़ि का व्यवहार कई स्थलों पर किया है। शशिव्रता विवाह के प्रसङ्ग में पृथ्वीराज एक नट से शशिव्रता के रूप की प्रशंसा सुनता है और उस पर आसक्त हो जाता है। नैषध चरित का नल भी नट-मुख से प्रिया के रूप गुण को सुनकर आकर्षित हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पद्मावतकार ने प्रेमोत्पत्ति के लिये उसी माध्यम का सहारा लिया है जो इस देश की कथाओं के लिये कोई अपरिचित चीज़ नहीं है।

(घ) भावी सौत की चिन्ता, किसी पत्नी को मरवा डालने का प्रयत्न।

प्रस्तुत लोक-कथा-रूढ़ि का सम्बन्ध 'नागमती सुआ संवाद खण्ड'

---

१. जायसी ग्रन्थावली (ना० प्र० स०) पृ० ३६।
२. वही, पृ० ४०।

से है। इस खंड की कथा में मार्के की बात है नागमती का हीरामन को मरवा डालने का असफल प्रयास। यहाँ हीरामन शुक नागमती के लिये एक भावी सौत की आशंका का हेतु है। इसीलिये वह अपनी एक दासी से उसको मार डालने के लिये कहती है, किन्तु दासी की कृपा से शुक जीवित रह जाता है। लोक कहानियों में किसी पक्षी को इस तरह से मरवा डालने की बात कई ढंग से आती है। कभी ये पक्षी किसी भावी आशंका के कारण स्वरूप मृत्यु के पात्र समझे जाते हैं और कभी ये किसी सुन्दरी राजकुमारी या राजकुमार के प्राणों के प्रतीक होते हैं--यानी उस पक्षी-विशेष को मार डालने पर वह व्यक्ति भी मर जाता है जिसका प्राण उसी पक्षी में बसता है। पहले तो यह बात रहस्य रहती है कि अमुक रानी का प्राण अमुक पक्षी में बसता है। किन्तु, उस रानी की शत्रु कोई अन्य स्त्री या पुरुष उस रहस्य का उद्‌घाटन करते हैं और फिर उस पक्षी को प्राप्त करके जब वे उसकी एक टाँग तोड़ देते हैं तो निर्दिष्ट व्यक्ति की एक टाँग टूट जाती है और इसी प्रकार जब उस पक्षी का गला ऐंठ दिया जाता है तब भी निशाना ठीक बैठता है और लक्षित व्यक्ति की भी मृत्यु हो जाती है।

पद्मावतकार ने यदि हीरामन में पद्मावती की प्राण प्रतिष्ठा की होती तब तो लोक-कथाओं की यह रूढ़ि हमें ज्यों की त्यों मिल जाती और उस परिस्थिति में यह भी सम्भव था कि नागमती स्वयं अपने हाथ से हीरामन का गला ऐंठ देती और कहानी ख़त्म हो जाती। किन्तु पद्मावतकार को कहानी का इतनी जल्दी समाप्त हो जाना अभीष्ट न था। उसने हीरामन में किसी के प्राण की प्रतिष्ठा नहीं की है किन्तु हीरामन राजा को अपने प्राणों से भी प्यारा है। जब राजा सुनता है कि हीरामन की हत्या करवा दी गई तब वह उसके साथ जल मरने को तैयार हो जाता है--

राजै सुनि बियोग तसमाना। जैसे हिय विक्रम पछिताना॥

की परान घट आनहु मती। की चलि होहुँ सुआ संग सती।[1]

किन्तु परिचारिका के चातुर्य से हीरामन मारा नहीं गया है, इसी लिये राजा भी आत्म-हत्या नहीं करता।

(ङ) जोगी रूप, जोगी खण्ड

लोक कथाओं में प्रिय की प्राप्ति के लिये नायक का राजपाट या घर द्वार त्याग कर जोगी हो जाना एक परिचित बात है। यह प्रिय सामान्य मनुष्य से लेकर ईश्वर तक हो सकता है। इस प्रकार वैरागी बनकर प्रिय की प्राप्ति करना केवल कथात्मक सत्य ही नहीं है, वरन् व्यावहारिक जीवन में भी प्रेम पथ के योगियों के अनेकानेक उदाहरण मिल जाते हैं। भगवान् की प्राप्ति के लिये ग्राहस्थ्य जीवन का त्याग करके सन्यास धारण करने वालों में गोरखनाथ, मच्छेन्द्रनाथ और राजा भरथरी का नाम आदर से लिया जाता है। इसी प्रकार जन-जीवन के सामान्य प्रेम व्यापार में भी प्रिय या प्रिया के लिये जोगी हो जाने की बात काफी प्रचलित है। लोक जीवन में इस प्रथा के पोषक कई प्रकार के गीत मिलते हैं—

लाखों ने धूनि रमाई, यार से मिलने को।
बन जोगी अलख जगाई, यार से मिलने को॥

... ...

तोहरे कारन सैंया धुनियाँ रमैबै,
धरबै जोगिनिया के भेस.....।

सन्त कबीर ने भी अपने परम प्रिय को प्राप्त करने के लिये जोगी का वेश धारण करने की बात कही है—

---

१. जायसी ग्रंथावली, (ना० प्र० सभा०), पृ० ३६।

फाड़ि पुटोला धज करौ, कामलड़ी पहिराउँ।
जिहि जिहि भेषां हरि मिलैं, सोइ सोइ भेष कराउँ॥[1]

पद्मावतकार ने पद्मावती की प्राप्ति के लिये रत्नसेन को जोगी बनाकर इसी परम्परा का पालन किया है। हीरामन के मुख से पद्मावती के पारस-रूप का वर्णन सुन कर रत्नसेन उसे प्राप्त करने को आतुर हो उठता है। उसके हृदय में प्रेम की चिनगी प्रगट होती है और फिर वह अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिये राजपाट छोड़कर एवं जोगी का वेश बनाकर सिंहल की राह लेता है—

तजा राज राजा भा जोगी।
औ किंगरी कर गहेउ बियोगी॥

सूफ़ी कहानियों में अक्सर यह देखा जाता है कि नायक अपनी प्रिया की प्राप्ति के लिये जोगी का वेश धारण करता है। इसका मूल कारण सूफ़ी साहित्य में लोक तत्व का समावेश ही है। जिस युग में इस देश में सूफ़ी सन्तों द्वारा सूफ़ी साहित्य का निर्माण हो रहा था उस युग में यहाँ के लोक जीवन पर नाथपंथी योगियों का काफी प्रभाव था। उनके अलौकिक एवं चमत्कारिक कृत्य लोक जीवन को प्रभावित करके लोक कथाओं में नाना रूप ग्रहण करने लगे थे। सूफ़ी कवियों ने जिस प्रकार लोक जीवन की अन्य बातें अपनाई उसी प्रकार उन्होंने लोक-कथाओं को लेते समय उनके योगी जीवन वाले पहलू को भी लिया; इस सम्बन्ध में डाक्टर सत्येन्द्र का यह कथन उल्लेनीय है—"लोक भूमि का वह भाग, जिसमें योग के चमत्कारों ने लोक कहानियों में परिणति पा ली थी, अपनी पृथक सत्ता रखता था। इसे सूफ़ियों और प्रेम-गाथाकारों ने ग्रहण किया। सूफ़ियों की प्रेम गाथाओं में एक ओर

---

१. कबीर ग्रंथावली, (ना० प्र० स०) ३।४१, पृ० ११

जहाँ जैन कहानियों के विद्याधरों के चमत्कारों का भी किंचित उपयोग है, वहाँ प्रत्येक कहानी में किसी न किसी रूप में जोगी या योगी भी अवश्य आता है। यह योगी नाथ सम्प्रदाय के योगी का ही अवशेष है। नायक ने बहुधा जोगी बन कर ही अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने की चेष्टा की है।"[१]

नायक का योगी का वेश बदल कर अपनी प्रिया से मिलने जाना या उसे प्राप्त करने का प्रयास करना लोक-कथाओं की एक प्रिय रूढ़ि भी है। पंजाब की लोकप्रिय कथा 'हीर रांझा' में हीर से मिलने के लिये रांझा योगी का वेश धारण करता है। 'सारंगा सदावृज' की कहानी में भी सदावृज भीख माँगने वाले योगी का रूप बदल कर सारंगा से मिलने जाता है। जगनिक के 'आल्हाखंड' में आल्हा-ऊदल कई स्थानों पर योगी का वेश बदलते हैं। कुतबन कृत 'मृगावती' में—मृगावती के उड़ जाने के बाद राजकुमार उसके वियोग में योगी का वेश धारण करके घर से बाहर निकल पड़ता है।[२]

(च) पूर्व निश्चित स्थान, शिव मन्दिर

मण्डप-गमन-खण्ड, पद्मावती-वियोग-खण्ड, पद्मावती-सुआ-भेंट खण्ड और बसन्त-खण्ड की कथा का का विकास एक अत्यन्त लोक-प्रिय कथा-रूढ़ि के आधार पर हुआ है। यह रूढ़ि है—किसी पूर्व निश्चित स्थान—देव मन्दिर आदि में नायक और नायिका का मिलन।

मध्यकालीन भारत में पर्दा प्रथा[३] की कठोरता के कारण एवं

---

१. आलोचना (पत्रिका, भाग ४, पृ० ३४।

२. डा० कमल कुलश्रेष्ठ, हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० ३३-३४।

३. "परदे की प्रथा का आरम्भ कब से और क्यों हुआ यह कहना कठिन है। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि राजपूत काल में जो पार्थक्य प्रथा आरम्भ हुई थी, उसका एक परिणाम परदा भी

अपनी कुल मर्यादा के अनुसार राजकुमारियाँ या सामान्य स्त्रियाँ बहुधा अपने राजमहल या घर से बाहर नहीं निकलने पाती थीं। घर से बाहर निकलने का अवसर, उनके जीवन में प्रायः देव पूजन और उत्सवों के अवसर पर ही उपस्थित होता था। इस देश के कवियों ने प्रायः ऐसे ही अवसरों को नायक नायिका के मिलाप के लिये चुना है। इनमें देव पूजन के समय शिव मन्दिर या किसी अन्य देवालय में पूर्व निश्चय के अनुसार मेल मिलाप कराने की रूढ़ि अत्यन्त प्रिय रही है। यही कारण है कि तत्कालीन कथा साहित्य में जितने भी प्रकार के प्रेम व्यापार (रोमांस) घटित हुए हैं उनमें से अधिकांश के क्रिया-स्थल निर्जन देव मन्दिर ही बनाये गये हैं। अनेकानेक कथाओं में ऐसे अवसर आते हैं जब नायक और नायिका का साक्षात्कार किसी देव मन्दिर में कराया गया है। प्रेम कथानकों की तो यह अपनी एक विशेषता ही है।

ऊपर हम जिन चार कथा खण्डों की ओर संकेत कर आये हैं उनकी कथा विस्तार के प्रमुख बिन्दु ये हैं—

१—हीरामन शुक की—

माघ मास, पाछिल पछ लागे।
सिरी पंचमी होइहि आगे॥
उघरहि महादेव कर वारू।
पूजहि जाई सकल संसारू॥
पद्मावत पुनि पूजे आवा। होइहि एहि मिसि दीठि मेरावा।

था। कुलीन वंश के लोग अपनी स्त्रियों को किसी के सामने नहीं आने देते थे और इसमें अपनी मानहानि समझते थे। फिर भी यह निश्चित है कि इस प्रथा का अत्यन्त विस्तार तथा वृद्धि मुस्लिम विजय के बाद हुई।" डा० परमात्मा शरण, मध्यकालीन भारत, पृ० १६।

इस सूचना के अनुसार रत्नसेन का शिव मन्दिर में जाना।

२—रत्नसेन का शिव की स्तुति करना और मण्डप में देववाणी का होना।

३—हीरामन और पद्मावती की भेंट।

४—श्रीपंचमी के अवसर पर पद्मावती का शिव पूजन के लिये मन्दिर में जाना और पूजन के पश्चात् अपने योग्य वर की प्राप्ति का वरदान माँगना।

५—पूजन के पश्चात् रत्नसेन और पद्मावती का साक्षात्कार।

इन बिन्दुओं के सम्मिलन से पाठक के सम्मुख जो सम्पूर्ण चित्र उपस्थित होता है उसके मूल में किसी पूर्व निश्चित स्थान बहुधा देव-मन्दिर में नायक और नायिका के मिलन वाली रूढ़ि है। हीरामन शुक की मध्यस्थता से जिस प्रकार रत्नसेन और पद्मावती का सम्मिलन शिव मन्दिर में हुआ है। ठीक उसी प्रकार अनेकानेक कथाओं में नायक और नायिका के प्रथम साक्षात्कार अथवा मिलन के लिये, स्थान स्वरूप शिव मन्दिर या किसी अन्य मन्दिर का ही ज़िक्र आता है।

महाभारत की कथा में कृष्ण और रुक्मिणी का मिलन एवं बाद में रुक्मिणी का हरण एक मन्दिर से होता है। गोस्वामी जी ने अपने मानस में सीता और राम के प्रथम दर्शन का उपयुक्त स्थल भवानी मन्दिर ही चुना है। रासो के 'पद्मावती समय' में भी पद्मावती और पृथ्वीराज का मिलन एक भवानी मन्दिर में ही होता है। इसी प्रकार यह लोक रूढ़ि अनेकानेक लोक-कथाओं एवं प्रेमाख्यानकों में थोड़ा बहुत परिवर्तन के साथ आती है। उसमान कृत 'चित्रावली' में चित्रावली और सुजान का प्रथम मिलन एक शिव मन्दिर में ही होता है। इसी प्रकार अवध के गाँवों में प्रचलित एक कहानी 'रानी सोना राजा हीरन' में भी सोना अपने विवाह के पश्चात् ससुराल जाते समय मार्ग में अपने पिता के शिव मन्दिर के पास पालकी रोकवा कर मन्दिर में

पूजा करने जाती है और वहाँ इसी बहाने अपने प्रिय 'हीरन' से मिलती है एवम् भावी कार्यक्रम निश्चित करती है।

कथा-सरित-सागर की 'मुक्तफल-केतु और पद्मावती' की कथा में भी नायक और नायिका का साक्षात्कार और प्रथम मिलन भवानी मन्दिर के पास होता है और प्रेम की कथा आगे बढ़ती है।[1]

यहाँ हम 'पद्मावत' की कथा के जिस स्थल विशेष की चर्चा कर रहे हैं उसमें कुछ एक और भी छोटी मोटी रूढ़ियाँ समाविष्ट हैं, जैसे-- रत्नसेन द्वारा शिव मन्दिर में स्तुति किये जाने के बाद मन्दिर में देववाणी होना और पद्मावती का शिव पूजन के पश्चात् देवाधिदेव महादेव से अपने योग्य वर माँगना। गोस्वामी जी ने अपने मानस में कई स्थलों पर आकाशवाणी या मन्दिर में देववाणी कराई है। विवाह के पूर्व कन्या का गौरी की पूजा करना या किसी अन्य देवी देवता की मनौती करना और योग्य वर की इच्छा प्रगट करना तो अत्यन्त लोकप्रचलित बात है। इसका आधार सामाजिक है। आज भी कुवांरी कन्याएँ गौरी की पूजा करती हैं और उसका अर्थ होता है योग्य वर की प्राप्ति की पूजा। देवी-देवता की पूजा द्वारा भावी के मंगल की कामना या मनोकामना की पूर्ति से सम्बन्धित कई लोक-गीत भी पाये जाते हैं--

हे गंगा माई, तोहें चुनरी चढ़ैबै,
सैयां से कै द मिलनियां राम।

या

लटकि रहे पलना, भवन में लटकि रहे—
जो महारानी मोरी मनसा पुरवहु,
तोहैं चढ़ैबै फुलना—भवन में लटकि रहे।

---

१. पेंजर, ओशन आफ़ द स्टोरी, भाग ८, पृ० १५७-५८।

जिस प्रकार 'पद्मावत' में पद्मावती शिव पूजन के समय यह कहती हैं—

और सहेली सबै बिवाही।
मो कह देव कतहु बर नाहीं॥
हौं निरगुन जेइ कीन्ह न सेवा।
गुनि निरगुनि दाता तुम देवा॥

बर सों जोगि मोहि मेरवहु, कलस जाति हौं मानि।
जेहि दिन हींछा पूजै, बेगि चढ़ावहुँ आनि॥[1]

ठीक उसी प्रकार मानस में सीता भी अपने 'अनुरूप-सुभग-वर' माँगती हैं।[2] वे गौरी की पूजा करते समय अपने 'मनोरथ' को सुफल करने की कामना प्रगट करती हैं।[3] इन दोनों में अन्तर इतना ही है कि पद्मावती अपने को संयमित नहीं रख पाई है किन्तु गोस्वामी जी ने जगदम्बा-सीता के मर्यादापूर्ण रूप का पूरा ध्यान रक्खा है।

अपभ्रंश साहित्य में भी कन्या द्वारा गौरी पूजन के समय योग्य वर के माँगने की बात आती है—

---

१. जायसी ग्रन्थावली, पृ० ८३।

२. मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु माँगा॥
—बालकाण्ड, ३।२२८।

३. मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के॥
कीन्हेउ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही।
—बालकाण्ड, २।२३६।

आयहिं जम्महि अन्नहिंवि, गोरि सुदिज्जहि कन्तु।
गय मत्तहं चत्तंकुसहं जो अब्भिडइ हसन्तु॥[1]

(छ) गौरा-पारवती और महादेव

हमारी लोक-कथाओं में पात्र स्वरूप देवी देवता भी बहुत महत्व-पूर्ण भाग लेते हैं। अवध की कहानियों में गौरा-पार्वती और महादेव का विशेष उल्लेख आता है। ये लोग समय-समय पर प्रेमी युगलों की परीक्षा लेने, मृतक नायक या नायिका को जीवित करने एवं प्रेम व्यापार में नायक या नायिका की सहायता करने के लिये अवतरित हुआ करते हैं।

पद्मावत कथा में गौरा-देई और महादेव निम्न अवसरों पर प्रगट होते हैं—[2]

१—शिव मन्दिर से पद्मावती के चले जाने के बाद जब रत्नसेन मूर्छा से जग कर उसके वियोग में आत्महत्या करना चाहता है तब महादेव कोढ़ी का वेश धारण करके आते हैं और उससे आत्महत्या करने का कारण पूछते हैं।[1]

२—इसी बीच पार्वती सुन्दर अप्सरा का वेश बदल कर रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा के लिये आ पहुँचती हैं।[2]

३—बाद में रत्नसेन महादेव को पहचान लेता है। वह उनकी वन्दना करता है और उनसे सिद्धि गुटिका प्राप्त करता है।[3]

---

१. नामवर सिंह, 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग', (अपभ्रंश पद्य संग्रह)–दोहा ११६।

२. १—जायसी ग्रन्थावली, पं० सं०–पृ० ६०।
२— ,, ,, ,, पृ० ६०-६१।
३— ,, ,, ,, पृ० ६२।

४—रत्नसेन राजा गन्धर्व सेन के किले पर आक्रमण करता है; पकड़ा जाता है; उसे सूली चढ़ा देने की आज्ञा होती है; इसी बीच महेश और पार्वती पुनः भाँट और भाँटिन का रूप धारण करके प्रगट होते हैं।[1] पद्मावती का पिता—राजा गन्धर्वसेन उन्हें पहचान लेता है, एवं उनके आदेशानुसार रत्नसेन और पद्मावती की सगाई कर देता है, आगे चलकर विवाह हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'पद्मावत' की कहानी में रत्नसेन और पद्मावती—नायक और नायिका के मिलन कराने का बहुत कुछ श्रेय इन दो अलौकिक पात्रों को ही है।

अवध के गाँवों में 'हीरामन सुआ और रानी पद्मावती' की जो कहानी कही जाती है, उसमें—महेश और पार्वती ठीक इसी रूप में आते हैं। जिस प्रकार पद्मावत की कथा में पार्वती प्रेमी की परीक्षा लेने का काम करती हैं ठीक उसी प्रकार नाथपंथी कहानियों में वे मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ आदि की परीक्षा लेती हैं। महादेव के यह कहने पर कि योगियों में काम विकार नहीं होता वे तुरन्त महेश की आज्ञा माँग कर परीक्षा लेने निकल पड़ती हैं।[2]

इस देश की प्राचीनतम लोक-कथाओं में महादेव और पार्वती का यह रूप देखने को मिल जाता है। विभिन्न रूपों में वेश बदल कर वे आते हैं और उनसे कथानक को महत्वपूर्ण गति एवं दिशा मिलती है। कहीं-कहीं तो उनके आने की या अवतरित होने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती वरन् उनकी मूर्तियाँ बोल दिया करती हैं या आकाशवाणी आदि हो जाया करती है।

---

१. जायसी ग्रन्थावली, पं० सं० पृ० ११२।

२. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ०।

कथा सरित सागर की शशांकवती और मृगांकदत्त की कथा में जब शशांकवती अपने प्रिय मृगांक को न पाकर निराश हो जाती है तब वह गौरी मन्दिर में मूर्ति के सम्मुख ही फाँसी लगाकर आत्म-हत्या करना चाहती है। इसी बीच मन्दिर में गौरी की प्रतिमा से आवाज़ आती है—"बत्से, मैंने तुझे स्वप्न में जो वचन दिया था वह झूठा नहीं हो सकता। ले तेरा प्रिय आ गया।" बाद में दोनों का मिलन होता है।[1]

(ज) सन्देश वाहक पक्षी

नागमती सन्देश खण्ड में हम एक पक्षी को सन्देशवाहक के रूप में पाते हैं। रत्नसेन को चित्तौड़ से गये एक वर्ष से भी अधिक बीत चुके हैं। विरहिणी नागमती उसके वियोग में जीवन की आशा छोड़ बैठी है। रत्नसेन के लौट आने की न तो कोई आशा है और न उसके पास सन्देश पहुँचाने का कोई उपाय। आखिर सात सागर पार करके कौन विरहिणी के दुख भरे सन्देशे को उसके प्रिय पति के पास पहुँचाये? इस अवसर पर पद्मावतकार ने फिर एक लोक रूढ़ि का सहारा लिया है और कथानक की रुकी हुई गाड़ी बड़े मजे से स्वाभाविक दिशा की ओर बढ़ चली है। आधी रात के समय नागमती विलाप कर रही है। इसी समय एक पंछी उससे पूछ उठता है कि—'तू क्यों इतना दुखी है? क्यों फूट-फूट कर रो रही है?' नागमती उससे सारा कच्चा चिट्ठा बयान करती है और रत्नसेन के पास अपना सन्देश ले जाने को कहती है। पंछी सन्देश को लेकर उड़ता है, सिंहलदीप पहुँचता है; वह एक ऐसे वृक्ष पर बैठता है—जिसके नीचे शिकार को आया हुआ रत्नसेन पहले से ही बैठा है; इसी अवसर पर पंछी अपना सन्देश कहता है और फिर उड़ जाता है। लोक-कथाओं में बहुधा ऐसा देखा जाता है कि दुःख या आपत्ति की घड़ियों में पंछी एक स्थान से दूसरे स्थान या

---

१. पेन्जर, ओशन आव द स्टोरी, भाग ७, पृ० १७६।

एक पात्र से दूसरे पात्र तक आवश्यक सूचनाएँ पहुँचाया करते हैं। पद्मावतकार ने नागमती सन्देश खण्ड की कथा का विकास इसी लोक-कथा रूढ़ि के आधार पर किया है। लोक-साहित्य में इस रूढ़ि के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं।

जिस प्रकार पद्मावत कथा में नागमती अपने प्रिय पति को लौटाने के लिये पंछी द्वारा सन्देश भेजती है ठीक उसी प्रकार राजस्थानी लोक-काव्य 'ढोला मारू' में मालवणी एक शुक द्वारा अपने पति के पास सन्देश भेजती है और उसे लौटाने का प्रयत्न करती है। दोनों कथाओं में अन्तर इतना ही है कि पहली में तो पंछी अपने कार्य में सफल होता है किन्तु दूसरी का शुक असफल रह जाता है। इसी प्रकार पृथ्वीराज-रासो में भी एक शुक इंछिनी और संयोगिता की प्रतिद्वन्द्विता के समय इंछिनी की वियोग विधुरा अवस्था की सूचना देकर राजा को उसकी बड़ी रानी इंछिनी की ओर उन्मुख करता है।

(झ) नौका दुर्घटना

लौकिक प्रेमाख्यानकों में नायक-नायिका के मिलन के पश्चात् या मिलन होते-होते बीच में ही किसी बाधा का समावेश करके कथानक को विस्तार दे देना एक अत्यन्त प्रचलित रूढ़ि है। इसके अन्तर्गत कई प्रकारों का समावेश हुआ है। कभी तो कुछ अलौकिक शक्तियाँ प्रेमी युगलों के बीच विछोह का कारण बन जाती है—जैसे 'मंझन कृत मधुमालती' में परियाँ एक बार राजकुमार मनोहर को राजकुमारी मधुमालती से मिलाकर उसे फिर से सोये में उड़ा ले जाती हैं और कभी-कभी स्वयं नायिका ही नायक को धोखा देकर कहीं अदृश्य हो जाती है—जैसे कुतबन कृत 'मृगावती' में स्वयं राजकुमारी मृगावती राजकुमार को धोखा देकर उड़ जाती है। (वस्तुतः नायक को धोखा देकर नायिका का इस प्रकार उड़ जाना या भाग जाना—भारतीय कथानकों की रूढ़ि नहीं है, सूफ़ी कवि ही इसे अपने साथ फ़ारसी कथाओं

से लाये थे)। ठीक इसी प्रकार इन कहानियों में रूढ़ि स्वरूप कुछ दुर्घटनाओं का समावेश हुआ है। इनमें से एक प्रसिद्ध अभिप्राय (मोटिव) है—जलयात्रा करते समय नौका या जहाज़ का किसी तूफान में टूट जाना और नायक एवं नायिका का अलग-अलग दो विपरीत दिशाओं में बह जाना! पद्मावतकार ने इस जलयान दुर्घटना वाली कथानक रूढ़ि को अपनी कथा में स्थान दिया है।

पद्मावती से विवाह कर लेने के पश्चात्, राजा रत्नसेन अपने देश चित्तौड़ की राह लेता है। मार्ग में उसे सागर पार करना है, इसलिये यात्रा जहाज़ों द्वारा होती है। जहाज़ अपनी स्वाभाविक गति से चले जा रहे हैं कि अचानक सागर में तूफ़ान आता है। विभीषण का एक बूढ़ा राक्षस मांझी राजा को सहायता देने के बहाने जहाज़ों को एक गहरे भँवर में ले जाता है। वहाँ जाकर जहाज़ गहरे पानी में चक्कर काट कर डूब जाते हैं, चूर-चूर हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप राजा और रानी दो पटरों पर दो विपरीत दिशाओं में बह जाते हैं।

पद्मावत की दुर्घटना वाली कथा का यही संक्षेप है। इस प्रकार की दुर्घटनाएँ थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ कुछ अन्य कथाओं में भी मिल जाती हैं। मंझन कृत 'मधुमालती' में राजकुमार मनोहर का जहाज़ टूट जाता है और वह एक पटरे पर बहता हुआ जंगल के किनारे लगता है।[1] कथा सरित सागर की 'सुन्दर सेन और मन्दारवती' की कहानी में हंस-दीप का राजा मन्दरदेव अपनी पुत्री मन्दारवती और उसके होने वाले पति सुन्दरसेन के जहाज़ टूट जाने की दुर्घटना का समाचार पाता है।[2] अंगरेज़ी कथा साहित्य में भी इस रूढ़ि के उदाहरण मिलते हैं। शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' में एक नौका दुर्घटना हुई है।

---

१. डा० कमल कुलश्रेष्ठ, 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य', पृ० ३६।
२. पेंज़र, 'ओशेन आव द स्टोरी', भाग ७, पृ० १४६।

नौका दुर्घटना से सम्बन्धित कथांश में लोक-कथाओं के अन्य परिात उपादान का भी समावेश हुआ है। अलौकिक शक्ति के रूप में भीषण का राक्षस रत्नसेन के जहाज़ों को भँवर में डाल कर चकनाार कर देता है। लोक-कथाओं में राक्षस और भूत-प्रेत आदि विभिन्न ों में आते हैं। कभी तो वे नायक और नायिका के सहायक के रूप आते हैं और कभी कष्ट पहुँचाने वाले अमानवीय पात्रों के रूप में। ोक जीवन ने इनकी जो कल्पना की है वह अत्यन्त विराट एवं भयाक है। इनकी साँस गरजती हुई आँधी है, ये अपनी भुजायें चालीसास तक फैलाकर मनुष्य को उसकी गन्ध मात्र से ढूँढ़ सकते हैं। मनुष्य ो कोसों तक हवा में उड़ा ले जाना तो उनकी विशेषता होती है। इस तरह के न जाने कितने अलौकिक कृत्य कर सकते हैं।[1]

पद्मावतकार ने राक्षस का जो स्वरूप चित्रित किया है,[2] वह भी

"In the folk-tales Rakshasas change their forms as they please, their breath is a roaring wind, they can spread their arms at a distance of eighty miles and discover human beings by their smell. They can carry men leagues into the air and if their heads are cut off they grow again. They posses kingdoms and enormous wealth which they bestow on those they favour....."

—W. Crooke : Religion and Folk-lore of Northern India, pp. 209-11.

२. लंका कर राकस अति कारा। आवै चला होइ अंधियारा॥
पाँच मूड़ दस बाहीं ताही। दहि भा साँव लङ्क जब दाही॥
धुआँ उठै मुख संसा सघाता। निकसै आगि कहै जौ बाता॥
फेंकरे मूँड़ चँवर जनु लाये। निकसि दाँत मुँह बाहर आये॥

लोक परम्परा पर ही आश्रित है। क्रुक महोदय ने अपने 'रेलिजन ऐंड फ़ोक-लोर आव नार्दर्न इण्डिया' में राक्षसों के जिस रूप की चर्चा की है वह पद्मावत के राक्षस रूप से बहुत कुछ मिलता जुलता है।

देह रीछ के रीछ डेराई। देखि दिष्टि धाइ जनु खाई॥
राते नैन नियर जो आवा। देखि भयानक सब डर खावा॥
धरती पाँय सरग सिर, जनहुँ सहस्रा बाहु।
चाँद सूर और नखत मह, अस देखा जस राहु॥
—'जायसी ग्रन्थावली' ना० प्र० सभा, पृ० १७३।

१. तुलनीय—

"The writers of Mahabharat describe them as fierce, tawny in hue, with adamantine teeth, stained with blood, their hair matted things, long and massive, theirfeet five in number, their bellies large, fingers set back-words, harsh in temper, with ugly feature, vioces loud and terrible..... and their throats coloured blue....."—W. Crooke Religion. and Folk-lore of Northern India, p. 209-11

तीसरा अध्याय

कला-पक्ष

भाषा—शैली—छन्द

और

अलंकार

कला-पक्ष

काव्य-वस्तु की भांति, काव्य-कला की दृष्टि से भी 'पद्मावत' लोकोन्मुख अधिक है। क्या भाषा, क्या शैली, क्या छन्द और क्या अलङ्कार सभी क्षेत्रों में पद्मावतकार ने लोक भावना की अभिव्यक्ति की है। प्रायः मध्ययुग के सभी सन्त कवियों की यही विशेषता रही है। ये सन्त कवि लोक जीवन के आदमी थे। सामान्य जन-जीवन के वातावरण में ही इन्हें सब कुछ कहना सुनना होता था। यही कारण है कि ये कवि जब बोलते थे तो लोक कण्ठ की वाणी में, जब गाते थे, तो लोक-गीतों की प्रेरणा से उद्भूत दोहा, चौपाई आदि मात्रिक छन्दों में; और जब इन्हें जनता के लिये कोई बड़ी बात कहनी होती थी, या जीवन के शाश्वत आदर्शों का सन्देश देना होता था तब ये लोक-कथाओं का आश्रय लेकर लोक शैली में ही अपनी अभिव्यक्ति करते थे। यद्यपि ये कवि शास्त्र से थोड़ा बहुत परिचित थे, किन्तु इनके काव्य की प्रवृत्ति काव्य-कला की दृष्टि से स्वच्छन्द और उन्मुक्त थी। इस विचार से 'पद्मावत' मध्ययुगीन सन्त काव्यों की काव्य-कला का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

(१) भाषा-विवेचन

लोक भाषा--प्रायः सभी सूफी काव्यों की भाषा अवधी है। यह अवधी संस्कृत के तत्सम शब्दों और कोमलकांत पदावलियों से युक्त

नहीं है, वरन् लोक भाषा की स्वाभाविक विशेषताओं से मण्डित है। लोक भाषा लोक-कण्ठ की भाषा होती है। वह साहित्यिक भाषा की भांति व्याकरणिक एवं शास्त्रीय नियमों से बँधी-सँधी नहीं होती। उसका शब्द-कोश और वाक्य-विन्यास साधारण बोल चाल का होता है। प्रत्येक देश में लोक भाषा का विस्तार-क्षेत्र व्यापक होता है। किसी साहित्यिक भाषा के जटिल, स्थिर और निष्प्राण हो जाने पर यह लोक भाषा ही अपना सिर उठाती है और अपनी सरसता एवं सारल्य के कारण नवयुग के नवीन साहित्य की भाषा का रूप ग्रहण कर लेती है। सूफी काव्यों की अवधी भी लोक भाषा का ऐसा ही साहित्य-गृहीत रूप है। अवधी भाषा के लोक-रूप के अध्ययन की दृष्टि से पद्मावत एक भाषा शास्त्रीय महत्व का ग्रन्थ है। उसमें भाषा का जो लोक-प्रचलित रूप मिलता है वह सोलहवीं शताब्दी के उत्तरी भारतवर्ष की जन-भाषा को समझने का उपयुक्त माध्यम है। उसका शब्द कोश, उसमें प्रयुक्त मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं लोक-कण्ठ में बसने वाली अनेक सूक्तियाँ और अनुश्रुतियाँ कुल मिलाकर भाषा का वही रूप प्रगट करती हैं जिसे बिना किसी हिचक के लोक भाषा कहा जा सकता है।

विद्वानों के मत—'पद्मावत' की लोक गृहीत भाषा पर विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के अपने विचार प्रकट किये हैं—

(१) रामचन्द्र शुक्ल—

"जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है.....उसमें अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिये हुए है।.....अवधी की खालिस बे-मेल मिठास के लिये 'पद्मावत' का नाम बराबर लिया जायगा।"[१]

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल, 'जायसी ग्रन्थावली की भूमिका', पृ० २०५-२०६।

(२) रामकुमार वर्मा–

"जायसी की रचना में तत्कालीन अवधी का रूप बच सका है। .....इनकी कृति स्वाभाविक बोल-चाल के यथातथ्य शब्दों से पूर्ण है।"[1]

(३) ए० जी० शिरेफ़–

"जायसी की भाषा वह स्थानीय बोली है, जो आज भी वहाँ (जायस में) बोली जाती है।"[2]

(४) जार्ज ग्रियर्सन–

"पद्मावत, सोलहवीं शताब्दी में बोली जाने वाली अवधी का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है।"[3]

(५) कमल कुलश्रेष्ठ—

"वह अपने उपदेशों को साधारण जनता के बीच फैलाने का प्रयत्न कर रहे थे। इस कारण उनकी भाषा जन साधारण की परिष्कृत भाषा थी।"[4]

स्थानीय बोली—जायसी अवध प्रान्त के निवासी थे। जायस नगर उनका निवास स्थान था और वहीं उन्होंने अपनी कथा का 'बखान' किया था।[5] उनके जीवन का लक्ष्य था अपने प्रेम-भक्ति के उपदेशों

---

१. डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ० ४४३-४४।
२. ए० जी० शिरेफ़, 'पद्मावती' की भूमिका।
३. जार्ज ग्रियर्सन, 'पद्मावती' की भूमिका।
४. डा० कमल कुलश्रेष्ठ, 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य', पृ० ३६८।
५. जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्हि बखानू।
—जायसी।

को जन-साधारण के बीच फैलाना। किसी पण्डित-समाज से उन्हें कुछ लेना देना न था। इसीलिये उन्होंने अपने आस-पास के प्रदेश की भाषा को अपनाया। यह भाषा पूरबी अवध के गाँवों की साधारण बोली है। इसी बोली का थोड़ा विकसित रूप आज भी इस प्रदेश में बोला जाता है। लगभग चार सौ वर्षों के गुज़र जाने के बाद भी उसमें कोई ऐसा बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ है, जो उसे 'पद्मावत' की भाषा से दूर की वस्तु ठहरा सके।[1]

वैसे तो बहुत सी सूफी प्रेम गाथाएँ लिखी गई हैं पर उनमें सबसे अधिक कीर्ति और प्रसिद्धि 'पद्मावत' को ही मिली है। पद्मावतकार की इस सफलता के जहाँ अनेकानेक कारण हैं, वहीं इसका सबसे बड़ा रहस्य है—उसकी भाषा का सारल्य एवं लोकाकर्षक रूप। यह एक ही बात 'पद्मावत' और पद्मावतकार की कीर्ति को अमर रखने के लिये पर्याप्त है। पद्मावत की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों अथवा उसकी कोमल-कान्त पदावली के लिये आग्रह नहीं है। वहाँ हम लोक-वाणी की स्वाभाविक मिठास पाते हैं। जायसी संस्कृत के विद्वान भी नहीं थे। यदि वह केशव या तुलसी की भाँति संस्कृत के पण्डित और ज्ञाता होते तो यह निश्चय था कि वह इन कवियों की भाँति संस्कृत के शब्दों और वैयाकरणिक रूपों के प्रयोग का मोह संवरण न कर पाते। पर, सौभाग्यवश बात ऐसी नहीं थी। इसीलिये 'पद्मावत' की भाषा में जायसी की सुनी सुनाई प्रादेशिक भाषा का लोकरूप सुरक्षित रह सका है।

'मानस' और 'पद्मावत' की भाषा में अन्तर—अवधी भाषा के ग्रन्थों में 'पद्मावत' के बाद 'रामचरित मानस' का नाम आदर से लिया जाता है। 'मानस' परवर्त्ती कृति है। उसमें और 'पद्मावत' की भाषा

---

१. ए० जी० शिरेफ, 'पद्मावती' की भूमिका।

में रूप की दृष्टि से तात्विक भेद है। कबीरदास के शब्दों में यदि कहा जाय तो पद्मावतकार ने 'कूप-जल' की भाति बँधी हुई शास्त्रीय भाषा का व्यवहार नहीं किया है। उसने जिस भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, वह 'बहता-नीर' है, उसमे लोक-भूमि पर बहने वाली भाषा की जन-गंगा का प्रवाह है। इसके विपरीत मानस की अवधी संस्कृत-गर्भित है। उसमें भाषा का परिनिष्ठित और परिमार्जित रूप व्यवहृत हुआ है। 'मानस' और 'पद्मावत' की एक ही भाषा—अवधी के दो भिन्न प्रकार के उदाहरण निम्नलिखित हैं—

पदमावति बिनु कंत दुहेली। बिनु जल कंवल सूखि जस बेली॥
गाढ़ी प्रीति सो मोसौं लाये। दिल्ली कंत निश्चित होइ छाये॥
सो दिल्ली अस निबहुर देसू। कोइ न बहुर कहै सन्देसू॥
जो गवनै सो तहाँ कर होई। जो आवै किछु जान न सोई॥
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गएउ सो बहुरि न आवा॥
कुआँ धार जल जैस बिछोवा। डोल भरै नैनन्ह धनि रोवा॥
लेजुरि भई नाह बिनु तोहीं। कुवाँ परी, धरि काढ़सि मोहीं॥
नैन डोल भरि ढारे, हिये न आगि बुझाइ।
घरी-घरी जिउ आवै, घरी-घरी जिउ जाइ॥[1] —'पद्मावत'

सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज विज्ञान रूप बलधामा॥
व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवंता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', ना० प्र० सभा, काशी, पृ० २६४।

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी॥
इहां मोह कर कारन नाहीं। रवि संमुख तम कबहुँ कि जाहीं॥
भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥[1] –'मानस'

प्रस्तुत दोनों उद्धरण पद्मावत और मानस की भाषा के दो अतिवादी छोर हैं। एक में जहाँ-दुहेली, निचिंत, निबहुर, डोल, लेजुरि और जिउ जैसे तद्भव एवं ठेठ शब्दों का व्यवहार हुआ है वहाँ दूसरे में–अखण्ड, व्यापक, अखिल, निर्मम, प्रकृति और अनुरूप जैसे संस्कृत के तत्सम शब्द छाये हुए हैं। इसी कारण मानस की भाषा साहित्यिक और परिनिष्ठित (स्टैण्डर्ड) हो गई है और 'पद्मावत' की भाषा में लोक-कण्ठ की वाणी (डाइलेक्ट) का रूप गृहीत हुआ है। कुछ पण्डितों को पद्मावत की यह भाषा ग्रामीणता के दोष से भरी दिखलाई पड़ती है।[2] परन्तु लोक-भाषा की दृष्टि से यही तो उसका गुण है। किसी भी भाषा में दैनिक जन-जीवन में बोले जाने वाले जितने ही अधिक शब्द गृहीत होंगे उतना ही अधिक वह लोक-भाषा के निकट होती जायगी। 'पद्मावत' की भाषा का अध्ययन साहित्यिक भाषा की दृष्टि से नहीं होना चाहिये, वह तो साहित्यिक भाषा के विकास की एक सीढ़ी है, उसका प्रारम्भिक रूप मात्र है।

समर्थ भाषा—किसी भी ग्रन्थ की भाषा उसके परिनिष्ठित रूप के कारण श्रेष्ठ नहीं होती। इसके लिये दो मानदण्ड निर्धारित किये जा

---

१. 'मानस' उत्तर काण्ड, दो० सं० ७२।

२. "ग्रामीणता के दोष से तो इनका ग्रन्थ भरा पड़ा है। इन्होंने (जायसी ने) इतने ठेठ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया जो किसी प्रकार बोध सुलभ नहीं।" 'हि० भा० और उसके साहित्य का विकास', पृ० २२६।

सकते हैं—एक तो वह लेखक के भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति में समथ है अथवा नहीं; दूसरे वह जिस देश काल में, जिस समाज के लिये लिखी जा रही है, उसके अनुरूप है अथवा नहीं। इस दृष्टि से 'पद्मावत' की भाषा अपने भावों की व्यञ्जना एवं अपनी सामाजिक अभिव्यक्ति में पूर्ण समर्थ है। रत्नसेन के सिंहल से वापस आने पर उसकी मुँह-देखी प्रीति के उत्तर स्वरूप नागमती कहती है—

काह हंसौ तुम मोसों, किएउ और सों नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी, हम मुख बरसै मेह॥

यहाँ हम लोक व्यवहार की सामान्य भाषा में भावों की जो मार्मिक व्यञ्जना पाते हैं वह अपने में पूर्ण है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में—

"पद्मावत की भाषा ऊपर से देखने पर बोलचाल की देहाती अवधी कही जाती है, किन्तु वस्तुतः वह अत्यन्त प्रौढ़, अर्थ-सम्पत्ति से समर्थ शैली है। अनेक स्थानों पर जायसी ने ऐसी श्लेषात्मक भाषा का प्रयोग किया है जिसके अर्थ लगातार कई दोहों तक एक से अधिक पक्षों में पूरे उतरते हैं।"[1]

उदाहरण के लिये मात्र एक पंक्ति ली जा सकती है—

बरसहिं नैन चुवहिं घर माहां।

एकदम सीधे-साधे शब्द हैं। किन्तु, यहाँ नैन का अर्थ नेत्र के अतिरिक्त एक और भी है—छप्पर में धुआँ निकलने का छेद भी नैन कहलाता है। यहाँ कवि का अभिप्राय है—टूटे छप्पर में से इन छेदों के रास्ते पानी घर के भीतर टपक रहा है।

---

१. ना० प्र० सभा, काशी, पत्रिका, हीरक जयंती अङ्क, पृ० १५५।

भाषा की एक रूपता—सम्पूर्ण पद्मावत में आदि से अन्त तक प्रायः एक जैसी भाषा का ही व्यवहार हुआ है। ऐसे स्थल बहुत कम आये हैं, जहाँ भाषा का थोड़ा संस्कृत रूप देखने को मिल जाता है—

वरनौं सूर भूमिपति राजा। भूमि न भार सहै जेहि साजा॥
हय गय सेन चलै जग पूरी। परवत टूटि उड़हिं होइ धूरी॥

× × ×

भुइं उड़ि अन्तरिक्ख मृतमण्डा। खण्ड-खण्ड धरती बरम्हंडा॥
डोलै गगन इन्द्र डरि कांपा। वासुकि जाइ पतारहिं चांपा॥[1]

किन्तु ऐसे स्थल अपवाद मात्र हैं। अधिकांशतः निम्नलिखित प्रकार की भाषा का ही व्यवहार हुआ है—

अहा जो रावन लंक बसेरा। गा हेराय कोइ मिला न हेरा॥
ठाढ़ मारि कै राजा रोवा। केइ चितउर गढ़ राज बिछोहा॥
कहाँ मोर सब दरब भंडारा? कहाँ मोर सब कटक खंधारा?
कहाँ तुरंगम बांका बली? कहाँ मोर हस्ती सिंघली?॥[2]

रामचरित मानस में गोस्वामी जी ने अनेक स्थलों पर अवधी के इस ठेठ रूप का व्यवहार किया है। किन्तु उन्होंने पात्रानुकूल भाषा का बड़ा ख़्याल रक्खा है। उनके मानस में जब कोल किरात कुछ कहते हैं तो उनकी भाषा ठेठ और लोक-कण्ठ की होती है—

तुम्ह प्रिय पाहुन बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥

× × ×

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहि न बासन बसन चोराई॥[3]

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', ना० प्र० स०, १-५। १४ पृ० ५।
२. वही, ४-७। ८ पृ० १७८-७९।
३. 'मानस', अयोध्याकाण्ड, १, ३।२५१।

इसके विपरीत जब राम, लक्ष्मण या भरत आदि कुछ कहते हैं तो उनकी वाणी में राज्य-कुल की मर्यादा का विधान होता है। किन्तु पद्मावतकार ने अपनी भाषा का लोक-रूप प्रत्येक अवसर पर सुरक्षित रक्खा है। क्या राजा, क्या जोगी और क्या कोई निम्न वर्ग का पात्र—सभी एक जैसी भाषा का व्यवहार करते हैं।

बोलचाल की अवधी की कतिपय विशेषताएँ—

हिन्दी की चार प्रधान उप-भाषाएँ हैं। इनमें एक है पूर्वी हिन्दी। इसका विकास प्राचीन अर्धमागधी प्राकृत से हुआ है। इसकी दो प्रमुख बोलियाँ हैं—अवधी[1] और छत्तीसगढ़ी। इनमें अवधी हरदोई जिले को छोड़कर शेष अवध की बोली है। यह लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फैज़ाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़ और बाराबंकी में तो बोली ही जाती है, किन्तु इन जिलों के अतिरिक्त दक्षिण में गङ्गा पार, इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर और मिर्जापुर में तथा जौनपुर के कुछ हिस्सों में भी बोली जाती है।[2] पद्मावतकार ने जिस अवधी का व्यवहार किया है वह इन सभी स्थानों की भाषा का कोई सामूहिक प्रतिनिधित्व नहीं करती। किंतु, यह सम्भव भी नहीं, क्योंकि स्थान-भेद के अनुसार किसी भी भाषा के कई रूप हो जाते हैं। हम पद्मावत में जिस भाषा का जन रूप पाते हैं, वह फैज़ाबाद प्रदेश और उसके आस-पास की बोली है जिसे पूरबी अवधी कहा जाता है।

---

१. इस भाषा का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन डा० बाबूराम सक्सेना ने अपने 'इवोल्यूशन आव अवधी' नामक ग्रन्थ में किया है।

२. डा० धीरेन्द्र वर्मा, 'हिन्दी भाषा का इतिहास', पृ० ६६।

अवधी का रूप

(१) अकारांत-शब्द—अवधी के शब्दकोष की विशेषता है–उसके शब्दों का अकारांत होना। खड़ी बोली आकारांत और ब्रज ओकारांत बहुला भाषा है। अवधी की इस विशेषता को लेकर, खड़ी बोली में आकारांत रूप में व्यवहृत होने वाले शब्द, 'पद्मावत' में अकारांत रूप में आये हैं।

नीचे पद्मावत के कुछ ऐसे शब्दों का उदाहरण दिया जाता है। तुलना के लिये उनका खड़ी बोली वाला रूप भी साथ है–

अवधी	खड़ी बोली
हिंडोल	हिंडोला
जमुन	जमुना, यमुना
साँवर	साँवरा, साँवला
पियार	पियारा, प्यारा
पाछिल	पिछला
तुम्हार	तुम्हारा
अस, ऐस	ऐसा
छोट	छोटा
भल	भला
तोर	तेरा
मोर	मेरा

(२) तद्भव शब्द—बोल-चाल की अवधी में शब्दों का व्यवहार उनके तत्सम रूप में नहीं होता। अधिकांश शब्द तद्भव रूप ग्रहण कर लेते हैं। जायसी की भाषा में 'काल', 'दान', 'आदि', 'संसार', 'सिद्ध', 'अमृत', और 'पुरुष', जैसे कुछ शब्दों को छोड़कर अधिकांश तद्भव शब्दों का ही व्यवहार हुआ है। उदाहरण स्वरूप पद्मावत में व्यवहृत कुछ तद्भव शब्दों और उनके तत्सम रूपों को दिया जा रहा है–

तद्भव शब्द	तत्सम रूप
अकास	आकाश
धरम	धर्म
समुद	समुद्र
परबत	पर्वत
कुसल	कुशल
रतन	रत्न
पदारथ	पदार्थ
मोती	मुक्ता
आंकुस	अंकुश
खेम	क्षेम

(३) उच्चारण--इस दृष्टि से अवधी की कई विशेषतायें हैं–

(क) ह्रस्व 'इ' के पश्चात् 'आ', ह्रस्व 'उ' के पश्चात् 'आ', 'अ' के पश्चात् 'इ' और 'आ' के पश्चात् 'इ' का उच्चारण अवधी को प्रिय है। जायसी द्वारा 'पद्मावत' में प्रयुक्त शब्द इस कसौटी पर भी खरे उतरते हैं। उन्होंने ब्याह के स्थान पर 'बियाह', क्वार के स्थान पर 'कुवार' आय-जाय (ब्र० भा०) के स्थान पर आइ-जइ और ऐहै-जैहै (ब्र० भा०) के स्थान पर 'अइहै-जइहै' का ही प्रयोग किया है।

(ख) अवधी में 'शकार' के स्थान पर 'सकार', 'णकार', के स्थान पर 'नकार' और 'क्षकार' के स्थान पर 'छकार' का उच्चारण होता है। 'पद्मावत' में कुमल, रावन और छत्री जैसे शब्द अवधी की इस विशेषता के उदाहरण हैं।

(ग) उच्चारण की एक अन्य स्वाभाविक प्रवृत्ति है पदों को संक्षिप्त करके बोलना। पद्मावतकार ने ऐसे संक्षिप्त पद

रूपों का व्यवहार किया है। 'कर' के स्थान पर 'क', 'लखेनि' के स्थान पर 'लखें' और 'लखिनि' के स्थान पर 'लखीं' जैसे उदाहरण इसी कोटि के हैं।

(४) कारक-लोप—अवधी में प्रथमा विभक्ति के चिन्ह 'ने' का प्रयोग बिलकुल नहीं होता। बोल-चाल की अवधी में अन्य कारकों का भी लोप हो जाता है। कारक-लोप की इस प्रवृत्ति का उदाहरण पद्मावत में अनेक स्थलों पर मिलता है।

प्रथमा-लोप	जियत कंत। तुम हम्ह गर लाई।	(तुम-ने)
तृतीया-लोप	लागीं कंठ आगि देइ गोरी।	(कंठ-से)
षष्ठी-लोप	गगन नखत जो जाहि न गने।	(गगन के)
सप्तमी-लोप	आजु सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़।	(दिन-में), (रात-में)

(५) क्रिया-रूप—बोल-चाल की शुद्ध अवधी में, क्रिया रूप सदैव कर्त्ता के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार प्रयुक्त होते हैं। यह विशेषता प्रायः सभी पूर्वी बोलियों की अपनी निजी विशेषता है। जायसी द्वारा व्यवहृत क्रिया रूप भी इस विशेषता से युक्त है—

	एक वचन	बहु वचन	
म	देखउँ	देखहिं, देखइँ	उ० पु०
तै	देखसि, देखहि, देखइ	देखह, देखउ	म० पु०
सा	देखसि, देखहि, देखइ,	देखहिं, देख	प्र० पु०
न	देख		
भू	देखउँ	देखेहिं	उ० पु०
तै	देखेसि	देखेह	म० पु०
	देखेसि, देख	देखेहिं	प्र० पु०
भ	देखिहउँ	देखिहइँ	उ० पु०
वि	देखिहइ	देखिहउ	म० पु०
भ	देखिहइ	देखिहइं	प्र० पु०

(६) ठेंठ शब्द—पद्मावतकार ने ठेंठ पूरबी अवधी के शब्दों का ख़ूब व्यवहार किया है। ये शब्द ऐसे हैं जो पूर्वी अवधी के लोक-कण्ठ में ही प्रचलित हैं। हिन्दी के अन्य विभाषाओं अथवा बोलियों के बोलने वालों के लिये ये शब्द अपरिचित हैं। यहाँ पद्मावतकार द्वारा प्रयुक्त कुछ ऐसे शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

ठेठ अवधी के शब्द	परिनिष्ठित रूप
सरबरि	बराबरी
बरोक	बरज्ञा (बर-रक्षा)
मकु	सम्भवतः
बेसाहना	ख़रीदना
ओनाना	झुकना, फिर आना
कारन	करुणा
रांघ	निकट, पास
तीवइ	स्त्री
मोकां	मुझको
वेहर	अलग, अलग*

---

* टिप्पणी—अवधी के व्याकरण के आधार पर पद्मावत की भाषा के प्रस्तुत विवेचन में तीन ग्रन्थों की सहायता विशेष रूप से ली गई है—

(१) 'ए ग्रामर आव हिन्दी लैंग्वेज', डा० एस० एच० कैलाग।

(२) 'पदुमावती'—इन्ट्रोडक्शन, जी० ग्रियर्सन।

(३) 'जायसी ग्रन्थावली की भूमिका'—पं० रामचंद्र शुक्ल।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ [1]

प्रत्येक लोक भाषा के पास मुहावरों और लोकोक्तियों का अपना एक विशाल कोश होता है। ये मुहावरे और लोकोक्तियाँ उस भाषा के मौखिक साहित्य का अंग होती हैं। समय-समय पर लोक कण्ठ अपनी भावाभिव्यक्ति को अधिक सशक्त और स्पष्ट बनाने के लिये इनका प्रचुर व्यवहार करता है। इनके प्रयोग के कारण उसकी उक्तियाँ तीव्र और समर्थ तो हो ही जाती हैं, साथ ही उसकी भाषा में भी स्वाभाविक प्रवाह और गति आ जाती है। सत्-साहित्य की भाषा या काव्य-रचना में इस प्रकार के मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग बाहुल्य अधिक अच्छा नहीं माना जाता। "मुहावरों को अधिक प्राधान्य देने से रूढ़ पद-समूहों में भाषा बँधी सी रहती है, उसकी शक्तियों का विकास नहीं हो पाता। कवि अपने विचारों को ढालने के लिये नये-नये सांचे न तैयार करके बने बनाये साँचों में ही ढलने वाले विचारों को बाहर करता है।"[2] पद्मावत की भाषा के लोक-रूप पर विचार करते समय मुहावरों और लोकोक्तियों के आधिक्य के कारण उसके रूढ़-बद्ध हो जाने का प्रश्न अधिक महत्व नहीं रखता। यहाँ भाषा के लोक उपादानों की दृष्टि से इनका प्रयोग उचित है। भाषा की दृष्टि से पद्मावतकार ने ठेंठ अवधी को उसके सर्वांगीण रूप में अपनाया है। यदि वह इन मुहावरों और लोकोक्तियों को हेय समझ कर छोड़ देता तो उसकी भाषा में वह प्रवाह और सारल्य न आ पाता जो जन-भाषा की बहुत बड़ी विशेषता है।

लगभग सभी प्रेमाख्यानक कवियों ने अपनी भाषा में जन-जीवन

---

१. परिशिष्ट में 'पद्मावत' में प्रयुक्त प्रमुख लोकोक्तियों और मुहावरों की सूची दी हुई है।

२. पं० रामचन्द्र शुक्ल, 'जायसी ग्रन्थावली की भूमिका', पृ० २०१।

में प्रचलित मुहावरों और कहावतों का व्यवहार किया है। जायसी के पारवर्ती कवि नूर मुहम्मद अपनी इन्द्रावती में कहते हैं–

जाके गोड़ न फटी बेवाई। सो का जानै पीर पराई॥

अथवा

रहै न एकौ अन्त कहैं, नारंग, दाड़िम, दाख।
देवस चार की चाँदनी, फिर अंधियारी पाख॥

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में हम लोक जीवन में प्रचलित एक मुहावरे और एक लोकोक्ति का प्रयोग ज्यों का त्यों पाते हैं।

इस प्रकार के प्रयोग जायसी ने खूब किये हैं। क्या मुहावरे और क्या लोकोक्तियाँ, दोनों ही उनके काव्य में भरी पड़ी हैं। किसी एक ही बात को जम कर कहने की धुन में कहीं-कहीं तो मुहावरों की पलटन खड़ी कर दी गई है। जैसे शेरशाह के शासन का गुणगान करते समय कवि की यह उक्तियाँ–

परी नाथ कोइ छुवै न पारा। मारग मानुष सोन उछारा॥
गऊ सिंह रेंगहिं एक बाटा। दुनौ पानि पियहिं एक घाटा॥
नीर खीर छानै दरबारा। दूध पानि सब करै निनारा॥
धरम नियाव चलै, सत भाखा। दूबर बली एक सम राखा॥
सब पृथवी सीसहि नई, जोरि जोरि कै हाथ।
गंग जमुन जौ लगि जल, तौ लगि अम्मर नाथ॥[1]

यहाँ हम एक साथ ही–'परीनाथ न छूना', 'मार्ग में सोना उछालना', 'गाय और सिंह का एक घाट पर पानी पीना', 'दूध का

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ६।

दूध और पानी का पानी' और 'जब तक गंगा जमुना में जल रहे'– जैसे मुहावरों का प्रयोग एक साथ पाते हैं।

इसी प्रकार कवि ने अनेक स्थलों पर लोकोक्तियों (जिन्हें लोक भाषा में कहावत या मसल कहा जाता है) के माध्यम से बड़ी सार्थक व्यञ्जनाएँ की हैं। एक स्थान पर नागमती हीरामन शुक को लक्ष्य करके कहती है–

माथे नहिं बैसरिय जौ सुठि सुआ सलोन।
कान टुटै जहि पहिरै का लेइ करब सो सोन॥[1]

यहाँ पद्मावतकार ने नागमती के लिये एक बड़ा लाभ उत्पन्न करने वाले सुग्गे की तुलना उस सोने के कानफूल से की है जिसके पहिनने से कान टूट जाता है। यहाँ कवि ने एक अत्यन्त प्रचलित कहावत का सहारा लिया है–

ओहि सोना पर फाट परै।
जेके पहिरे कान टुटै॥

पद्मावतकार की लोकग्राहिणी प्रतिभा में कहीं फ़ारसी और संस्कृत आदि की उक्तियों को भी बड़ी चतुराई से अपना लिया है। जैसे–

थल थल नग न होहिं जेहि जोती।
जल जल सीप न उपनहि मोती॥
बन बन बिरिछ न चन्दन होई।
तन तन बिरह न उपजै सोई॥[2]

ठीक ऐसी ही बात संस्कृत के एक श्लोक में कही गई है–

---

१. वही, पृ० २६।
२. वही, पृ० १६८।

शैले शैले न माणिक्यं,
मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र,
चन्दनं न वने वने॥

यह उक्ति मन्झन कृत मधुमालती में भी थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ आई है।

रतन कि सागर सागरहि, गज मोती गज कोय।
चन्दन कि वन वन उपजइ, बिरह कि तन तन होय॥

ये सभी उक्तियाँ लोक जीवन के सामान्य स्रोत से गृहीत हुई हैं। किसी एक कवि ने किसी दूसरे कवि से इन्हें चुराया नहीं है।

(२) शैली का लोक-रूप

पद्मावत की शैली के लोक-रूप पर विचार करते समय तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(१) कहानी कहने का ढंग
(२) व्यंजना का सारल्य, और
(३) छन्द (दोहा, चौपाई)

(१) कहानी कहने का ढंग—पद्मावतकार ने जिस ढङ्ग से अपनी कहानी कही है उसे हम लोक-कथाओं की शैली के रूप में पा सकते हैं। अनेक स्थलों पर कहानी ने वही रूप ग्रहण किया है जो रूप—'दादी और नानी वाली' कहानियों की अपनी विशेषता है। इन गल्पू कथाओं की दो विशेषताएँ हैं—

(क) कुतूहल की पूर्ति करना
(ख) उपदेश देना

(क) सामान्य जन-कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे श्रोता या पाठक की उत्सुकता को बराबर बनाये रक्खे। "हाँ, तो फिर क्या हुआ ? उस राजा ने कैसे अमुक-अमुक परिस्थितियों में अपनी रक्षा की ? अरे हाँ ! और उस राजकुमारी का क्या हुआ ?" ऐसे ही अनेक प्रश्न लोक-कथाओं के श्रोता को विकल किये रहते हैं। इनके उत्तर स्वरूप इन कहानियों का वक्ता लोक-कंठ बड़ी तेज रफ्तार से घटनाओं के घोड़ों को दौड़ाता जाता है और उनकी एक-एक टाप के साथ स्वर मिलाकर श्रोता 'हूँ', 'हाँ' की हुँकारी भरता जाता है। 'पद्मावत' में घटना-चक्र इतनी तेज़ी से तो नहीं चलता क्योंकि उसकी कथा विशुद्ध लोक-कथा न होकर उस पर आधारित और विकसित है एवं कवि कल्पना द्वारा गृहीत कथा है, फिर भी थोड़े बहुत अन्तर के बाद घटनाओं के घोड़ों की टाप सुनाई पड़ जाती है। ऐसे ही स्थलों पर पद्मावतकार लोक-कथा-वाचक का रूप ग्रहण करता है। ऐसा ज्ञात होता है मानों वह दस पाँच उत्सुक श्रोताओं की 'हुँकारी' को ध्यान में रख कर अपनी कथा को कह रहा है। 'पद्मावत' में ऐसे अनेक स्थल आये हैं, जहाँ पद्मावतकार 'आगे फिर क्या हुआ' का उत्तर देने में सतर्क दिखलाई पड़ता है। यहाँ हम ऐसे कुछ एक प्रमुख स्थलों को लेते हैं। सबसे पहले वह अपने श्रोताओं या पाठकों को सतर्क करता है और कहता है 'अच्छा भाई सुनने वालो ! अब ज़रा ख़ामोश हो जाओ। मैं सिंहलदीप की कथा सुनाऊँगा। पहले तुम्हारे सम्मुख वहाँ की सुन्दर पद्मिनियों का वर्णन करता हूँ।.....बहुत दिनों की बात है, वहाँ एक गन्धर्वसेन नाम का राजा राज्य करता था।[1] इसके बाद वह सम्पूर्ण सिंहलदीप का वर्णन कर जाता है। आगे जब पद्मावती के जन्म का वृत्तांत आता है तो वह एक बार फिर श्रोताओं की उत्सुकता को टटोल लेता है। हाँ ! भाई देखो, अब पद्मावती का

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', ना० प्र० सभा, काशी, पृ० १०।

जन्म होने वाला है, यहीं से तो कथा सुन्दर रूप ग्रहण करेगी।..... जब, जो कुछ, जैसा होने को लिखा रहता है, वही होता है। विधाता के लेख को कोई मिटा नहीं सकता।[1] इसी तरह कथा आगे बढ़ती जाती है। पद्मावतकार यहाँ तक की कहानी कह चुका है कि हीरामन शुक द्वारा पद्मावती के रूप का वर्णन सुनकर राजा रत्नसेन उसे प्राप्त करने को बेहाल है। इसके बाद ऐसा जान पड़ता है कि मानो कोई बाल श्रोता अचानक पूछ उठा हो—"बाबा! फिर आगे क्या हुआ?" और पदमावतकार उत्तर देता है—"फिर..... फिर वह राजा उस रानी के वियोग में जोगी हो गया। उसने राज-पाट छोड़ दिया। हाथ में छोटी सी सारंगी लेकर गाता बजाता उसे प्राप्त करने के लिये चल पड़ा।"[2] लक्ष्मी समुद्र खण्ड के पश्चात् कहानी का एक भाग समाप्त होता है। समुद्र में तूफ़ान के कारण वह जाने के पश्चात् लक्ष्मी की सहायता से राजा और रानी मिलते हैं। इस स्थल पर पद्मावतकार बिलकुल एक लोक कथाकार की भाँति आशीर्वचन कहता सुनाई पड़ता है। "जैसे उनका राजपाट लौटा, वैसे सब का लौटे" की भाँति जन-कथाओं के अन्त वाले वाक्यों के रूप में वह कहता है—

जिन काहू कर होइ बिछोऊ।
जस वै मिलै, मिलै सब कोऊ॥[3]

इसी प्रकार सम्पूर्ण कहानी अनेक स्थलों पर लोक-कथा शैली का रूप ग्रहण करती हुई जब समाप्त होने को आती है, और पद्मावती एवं नागमती अपने प्रिय के साथ जल कर समाप्त हो जाती हैं, तो पद्मावतकार कहानी की सम्पूर्ण करुणा के साथ, एक ही निर्वेदात्मक वाक्य द्वारा

---

१. वही, पृ० १८।
२. वही, पृ० ५३।
३. 'जायसी ग्रन्थावली' ना० प्र० सभा० काशी, पृ० १८४।

पाठक के ऊपर छा जाता है—"जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार", [1] यहाँ आकर पाठक या श्रोता का ऐंद्रजालिक स्वप्न टूट जाता है, वह घटनाओं और मोहक वर्णनों के आकाश से अचानक धरती पर उतर आता है और कहानी खत्म हो जाती है। अन्त में कुछ निष्कर्षात्मक पंक्तियों (कनक्लूडिंग लाइन्स) के साथ 'पदमावत' का कहानीकार मौन ग्रहण कर लेता है—वह कहता है "भाई ! अब वह पद्मावती रानी कहाँ रह गई। इस संसार में कोई नहीं रह जाता। केवल कहने सुनने को अतीत की कहानी बन जाता है। लेकिन वही धन्य है जो अपने बाद अपनी कीर्ति-गाथा छोड़ जाता है। जो किसी फूल की तरह सूख जाता है लेकिन जिसकी कीर्ति का सौरभ आकाश में छाया रहता है।"[2]

इस प्रकार पदमावतकार ने अपनी कहानी उसी ढङ्ग से लिखी है जैसे एक लोक-कण्ठ अपनी कहानियाँ कहता है।

(ख) उपदेशात्मक प्रवृत्ति—कथा कहानियों के माध्यम से अनेक प्रकार के उपदेश देना, इस देश की एक प्राचीन प्रथा है। यहाँ के कथाकारों ने अपनी कहानियों का लक्ष्य केवल मनोरंजन ही नहीं रक्खा है। मनोरंजन के साथ-साथ अपने पाठक या श्रोता को वे बौद्धिक भोजन भी देते गये हैं। इस प्रकार की उपदेशात्मक (डिडेक्टिक) कहानियों की यहाँ एक अलग कोटि है जिसके अन्तर्गत पन्चतन्त्र की कहानियाँ विशेष रूप से आती हैं। ये कहानियाँ किसी विशेष उपदेश या नीति-शिक्षा को लक्ष्य करके लिखी गई हैं और इनमें उपदेशात्मकता

---

१. वही, पृ० ३२०।

२. कहं सुरूप पद्मावति रानी ! कोइ न रहा, जग रही कहानी।
धनि सोई जस कीरति जासू। फूल मरै, पै मरै न बासू॥
वही, पृ० ३०१।

अधिक उभर आई है। कहानीपन दबा सा रह गया है। लोक-जीवन समय-समय पर ऐसी कहानियों का उपयोग तो करता ही है साथ ही साथ वह अपनी अन्य प्रकार की कहानियों में भी यथास्थान उपदेशों की छौंक देता चलता है। ऐसे स्थलों पर वह कुछ विशेष प्रकार की लोकोक्तियों और कहावतों का उपयोग करता है। अधिकांशतः ये उक्तियाँ कहानी के अन्त में कही जाती हैं। जैसे किसी कहानी को समाप्त कर लेने के पश्चात् यह कहना कि–'लालच का फल बुरा होता है' या 'जैसे को तैसा मिलै, मिलै नीच को नीच' आदि।

पद्मावतकार ने इस दूसरे प्रकार की उपदेश देने वाली कहानियों की शैली को अपनाया है। उसने अपनी कहानी के बीच-बीच में यथा-स्थान अनेक प्रकार की लोकोक्तियों और कहावतों का समावेश किया है। भाषा के लोक रूप पर विचार करते समय हम इन कहावतों पर विस्तृत रूप से कह आये हैं। यहाँ हम उनके एक शेष पहलू–यानी उनके उपदेशात्मक रूप को ही लेंगे। एक स्थान पर जायसी कहते हैं–

ओछ जानि कै काहुहि, जिनि कोई गरब करेइ।
ओछे पर जो दैउ है, जीति पत्र तेइ देइ॥[1]

यहाँ प्रसंगानुसार जोगी वेशधारी रत्नसेन को राजा गन्धर्वसेन फाँसी देने जा रहा है। इसी अवसर पर प्रस्तुत उक्ति एक भाँट द्वारा कही गई है। आगे चलकर शिव जी की सहायता से रत्नसेन को विजयी बनाकर जायसी अपनी इस उक्ति की सार्थकता भी प्रगट कर देते हैं। उपदेशात्मक उक्ति को कह कर बाद में उसकी सार्थकता प्रगट कर दी जाती है या सारी कहानी को प्रमाण बनाकर बाद में कोई नीति-शिक्षा विषयक उक्ति कह दी जाती है।

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', ना० प्र० सभा, पृ० ११४।

इसी प्रकार एक अन्य उक्ति ली जा सकती है–

छर कीजे बर जहाँ न आँटा।
लीजे फूल टारि कै काँटा।[1]

अलाउद्दीन चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण करता है। बहुत दिनों के घमासान युद्ध के बाद भी उसे सफलता नहीं मिलती। अब वह बल से हार जाने के बाद छल से रत्नसेन को बन्दी बनाना चाहता है। इसी अवसर पर जायसी ने उक्त सत्य की अभिव्यक्ति की है। जीवन के ऐसे अनेक शाश्वत सत्य हमारी लोक कथाओं के भण्डार में सुरक्षित हैं। पद्मावतकार ने अपनी कहानी में खुलकर उनका उपयोग किया है।

(२) व्यंजना का सारल्य––लोक-कथाएँ, लोक-भाषा में तो कही ही जाती हैं, इसके साथ-साथ वहाँ साहित्यिक कथा-शैलियों या कथा-काव्यों जैसा उक्ति चातुर्य नहीं रहता। वहाँ कोई एक भी बात टेढ़े ढंग से नहीं कही जाती। बातें सभी सारगर्भित और लोकानुभूत होती हैं किन्तु वे इतने सीधे ढंग से कही जाती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उन्हें आसानी से समझ सके और उन्हें अपने जीवन में आसानी से उतार सके। कथा कहानियों में ही नहीं, जीवन के अन्य सामान्य अवसरों पर भी लोक-कंठ अपनी सरल और टूटी-फूटी वाणी में अनेक प्रकार की मार्मिक व्यंजनाएँ किया करता है। जाड़े की रातों में अलाव के चारों ओर बैठे हुए वृद्धजनों की बातचीत में जो गहराइयाँ रहती हैं, वे इतने स्पष्ट और सरलतम ढंग से कही जाती हैं कि सुनने वाले के हृदय पर एकदम सीधे तीर की तरह चोट करती हैं; जैसे यह उक्ति–

---

१. 'जायसी ग्रंथावली', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० २६०।

एक दिन 'ढिल्लन' वे रहे कि निस दिन बांधे पाग।
एक दिन ढिल्लन वे भये कि बैठ उड़ावैं काग॥

यहाँ जीवन के अन्तिम पहर बुढ़ापे की सारी करुणा और सारी निराशा इन दो पंक्तियों में साकार हो उठी है। इस प्रकार इतने सरल और संक्षिप्त ढंग से जीवन के चिरन्तन और शाश्वत सत्यों को उद्घाटित कर देने की शक्ति लोक-वार्ताओं की शैली में ही है। जायसी ने अनेक स्थलों पर लोक-वार्ताओं की इस सरल और संक्षिप्त शैली में मार्मिक व्यंजनाएँ की हैं। यहाँ हम उनकी एक उक्ति को लें–

भोर होइ जौ लागै उठहिं रोर कै काग।
मसि छूटहिं सब रैनि कै, कागहि केर अभाग॥[1]

"भाई! सब अपने-अपने भाग्य और कर्म से होता है। सवेरा होता है। सम्पूर्ण रात्रि की कालिमा धुल जाती है। किन्तु! बिचारे कौवे काँव-काँव रटते ही रह जाते हैं और उनकी कालिमा का लेश मात्र अंश भी नहीं मिटता।"

वार्ता शैली––शैली के एक अन्य रूप में पद्मावतकार ने कहीं-कहीं सामान्य जनता की बातचीत की शैली को भी अपनाया है। ऐसे स्थलों पर ऐसा जान पड़ता है मानो कवि ने साधारण गद्य को पद्यबद्ध मात्र कर दिया हो। पद्मावत के साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से ऐसे स्थल बहुत महत्वपूर्ण नहीं जान पड़ते; किन्तु दो दृष्टियों से इनका महत्व है–एक तो कथानक के प्रवाह को गति देने वाली छोटी-मोटी लहरों के रूप में, दूसरे लोक शैली के रूप में। यहाँ हम ऐसे एक स्थल का उद्धरण लेते हैं–

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', ना० प्र० सभा, काशी, पृ० २४०।

हाथ पसारि धाई कै भेंटी। चीन्हा नहिं, राजा कै बेटी॥
... ...
नाँव पिता कर दूबे बेनी। सोइ पुरोहित गंधरब सेनी॥
तुम बारी तब सिंघल दीपा। लीन्हे दूध पियाइउं सीपा॥

ठाँव कीन्ह मैं दूसर, कुम्भल नेरै आइ।
सुनि तुम्ह कहं चितउर महं कहिउं कि भेंटौं जाइ।[1]

प्रस्तुत उद्धरण 'देवपाल' दूती खण्ड से लिया गया है। देवपाल की एक कुटनी पद्मावती को बहकाने के लिये आती है। पद्मावती से नैकट्य स्थापित करने के लिये वह अपने को सिंहलदीप का बताती है। और बड़े तपाक से मिलती है एवं बड़े स्वाभाविक ढंग से अपना परिचय देती है–"अरी ओ राजा की बेटी! तूने मुझे पहचाना नहीं। मेरे पिता का नाम बेनी दूबे है। वही तो राजा गन्धर्वसेन के पुरोहित हैं। तूँ तो तब सिंहलदीप में बड़ी छोटी थी जब मैंने तुझे गोद में लेकर सीपी-सीपी दूध पिलाया था। (अरे भाई, अब तो बड़ी हो गई है, रानी हो गई है, अब भला काहे को पहचानेगी)। (बहुत दिन हुए) मैंने यहाँ कुम्भलनेर में आकर स्थान ग्रहण किया। सुना कि तूँ भी यहाँ चित्तौड़ में आ गई है, सोचा जाऊं चलूँ भेंट कर आऊँ।" गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने मानस में बातचीत की इस सरल शैली का व्यवहार कुछ स्थलों पर किया है–

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फौरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा॥
... ...

---

१. वही, ४ (४-७)।

हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती। नाहीं त मौन रहब दिन राती॥
... ...
कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥
... ...
जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥[1]

परन्तु पद्मावत की अपेक्षा मानस में ऐसे स्थल कम हैं। ऐसे स्थलों का आधिक्य, लोकवार्ता शैली की दृष्टि से पद्मावत की विशेषता है, 'मानस' की नहीं।

(३) छंद योजना

दोहा चौपाई—पद्मावतकार ने दोहे और चौपाई के छन्दों का व्यवहार किया है। अवधी भाषा में कथात्मक या प्रबन्ध काव्य लिखने वाले प्रायः सभी कवियों ने इन दोनों छन्दों को अपनाया है। कथानक को एक गतिशील प्रवाह देने वाले ये छन्द अवधी के कवियों को बहुत प्यारे रहे हैं परन्तु, इन छन्दों को अपनी समर्थ लेखनी से प्रारम्भ में ही, जायसी ने जितना अधिक सजाया सँवारा है, इनका उतना अधिक सजाव सिंगार गोस्वामी तुलसीदास के अतिरिक्त कोई अन्य कवि नहीं कर सका है।

मात्रिक छन्द—हिन्दी साहित्य की भूमिका और उसकी आदि कालीन परम्परा से अपरिचित कुछ लोगों का ऐसा अनुमान है कि ये छन्द सूफी कवियों के अपने निजी आविष्कार हैं। वस्तुतः बात ऐसी

---

१. 'रामचरित मानस', अयोध्या काण्ड १६। १-७।

नहीं है। दोहे और चौपाई की परम्परा भारतीय साहित्य की है, परन्तु वह परम्परा संस्कृत की नहीं है। संस्कृत के 'इन्द्रवज्रा', 'वसन्त तिलका' और 'मन्दाक्रान्ता' आदि छन्द वर्णिक हैं। उनका संगीत गणों के आरोह, अवरोह पर निर्भर करता है। इसके विपरीत दोहा और चौपाई मात्रिक छन्द हैं। परवर्ती हिन्दी साहित्य के तुकांत मात्रिक छन्दों का विकास इन्हीं दो सरल और सरस छन्दों के आधार पर हुआ है। दोहे और चौपाई के इन मात्रिक छन्दों की परम्परा का इतिहास अपभ्रंश साहित्य के इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। संस्कृत के वर्णिक छन्दों से टक्कर लेने वाले इन तुकपूर्ण नवीन छन्दों की कारीगरी का प्रचलन सबसे पहले अपभ्रंश ने ही किया।

परम्परा—इन छन्दों का आश्रय लेकर प्रबन्ध या आख्यानक काव्य लिखने की प्रथा भी अपने प्राचीनतम रूप में अपभ्रंश साहित्य की है। अपभ्रंश के अधिकांश काव्य कड़वक-घत्ता शैली में लिखे गये हैं। अपभ्रंश का कवि अरिल्ल या पज्झटिका छन्द की कई एक पंक्तियाँ दे लेने के पश्चात् ध्रुवक के रूप में एक द्विपंक्तिबद्ध छन्द (कापुलेट) दे दिया करता था। इस पूरे छन्द को कड़वक कहते थे। मध्यवर्ती छन्दों के रूप में बहुधा पद्धड़िया की ही ७–८ पंक्तियाँ दी जाती थीं। अरिल्ल छन्द का प्रयोग थोड़ा कम होता था। यह अरिल्ल ही चौपाई का पूर्व रूप है। ध्रुवक के रूप में जिस 'घत्ता' छन्द का व्यवहार होता था वह दोहे से भिन्न प्रकार की रचना है। वैसे तो अपभ्रंश साहित्य में दोहा छन्दों का बाहुल्य था परन्तु घत्ता के स्थान पर ध्रुवक देने के लिये इनका उपयोग नहीं के बराबर था। कुछ इने-गिने स्थानों पर ही ध्रुवक के रूप में इनका व्यवहार मिलता है। लेकिन यह तो कहा ही जा सकता है कि ध्रुवक के रूप में दोहे का प्रयोग अपभ्रंश कवियों के लिये अपरिचित बात नहीं थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोहे और चौपाई के माध्यम से काव्य लिखने की शैली का मूल स्रोत अपभ्रंश साहित्य में ही है।

अपभ्रंश के कवियों ने दोहे और चौपाई के गठबन्धन को बहुत कम स्वीकार किया था। इनके योग से प्रबन्ध काव्य लिखने की शैली उनके बीच बहुत लोक-प्रिय नहीं हुई। इस शैली को सबसे पहले पूर्वी प्रदेश के बौद्ध सिद्धों ने प्रोत्साहन दिया। पण्डित हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' और 'हिन्दी साहित्य का आदि-काल' नामक ग्रन्थद्वय में इन छन्दों की परम्परा और उनके परवर्ती विकास पर गम्भीरता पूर्वक विचार करते हुए सिद्ध सरहपाद की रच-नाओं में से दोहे और चौपाई का एक अंश उद्धृत किया है–

अइसें विसन संधि को पइखइ। जो अइ अत्थिणउ जावन दीसइ॥
पंडिअ सअल सत्थ बक्खाणइ। देहहि बुद्ध बसन्त न जाणइ॥

गमणा गमण न तेन विखण्डिअ।
तो वि णिलज्ज भणइ हउं पण्डिअ॥

जीवन्तह जो नउ जरइ,
सो अजरामर होइ।
गुरु उबएसें विमल मइ,
सो पर धण्णा कोइ॥[1]

इस स्थल पर विचार करते हुए पण्डित जी के ये शब्द उल्लेख-नीय है–"चौपाई दोहे का सबसे पुराना प्रयोग शायद यही है। जो कुछ पुराना साहित्य उपलब्ध है उससे लगता है कि पूर्वी प्रदेश के बौद्ध सिद्धों ने ही इस शैली में लिखना शुरू किया था।..... गोरखनाथ की बताई जाने वाली वाणियों में भी कंथचित इस पद्धति

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ० ५८। 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', पृ० ६६।

को खोज लिया जा सकता है और कबीर ने तो निश्चित रूप से इस पद्धति का व्यवहार किया था।"[1]

आगे चलकर बौद्ध सिद्धों के पश्चात् जैन कवियों ने दोहे के साथ चौपाई का मिलाप पर्याप्त मात्रा में कराया। स्वयंभूदेव के विशाल महाकाव्य–'पउमचरिउ' (रामायण) में इस शैली ने एक निश्चित दिशा ग्रहण की। इस सम्बन्ध में डा० रामकुमार वर्मा के 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' नामक ग्रन्थ से प्रस्तुत उद्धरण ध्यान देने योग्य है–

"यद्यपि चौपाई छन्द का प्रयोग कुछ सिद्ध कवियों द्वारा भी हुआ है। तथापि जैन कवियों ने दोहा छन्द के साथ चौपाई का मेल बड़े सुन्दर ढंग से किया है। स्वयंभूदेव ने अपने 'पउमचरिउ' में तो दोहा और चौपाई का प्रयोग ही अधिकतर किया है। सम्भव है राम काव्य के महाकवि तुलसीदास ने स्वयंभूदेव का 'पउमचरिउ' देखा हो और उसी शैली के अनुकरण में 'दोहा-चौपाई' की शैली में अपना रामचरित मानस लिखा हो।"[2]

वर्मा जी के उपर्युक्त कथन के आधार पर तुलसी के पूर्ववर्ती कवियों के लिये भी यह सम्भावना हो सकती है कि वे जैन काव्यों की इस दोहा चौपाई वाली शैली के सम्पर्क में आये हों। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने 'पउमचरिउ' जैसे ग्रन्थों का अध्ययन किया था पर इतना तो निश्चित है कि छन्दगत शैली की दृष्टि से ये कवि–विशेष रूप से सूफ़ी कवि अपभ्रंश साहित्य की परम्परा के ही अनुगामी थे।

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', पृ० ६६।
२. डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ० १६५।

सूफ़ी काव्य अपभ्रंश साहित्य की इस दोहा चौपाई वाली शैली की ही परवर्ती कड़ी है, पूर्ववर्ती छोर नहीं।

दोहा—अपभ्रंश साहित्य का प्रतीक—यह छन्द अपभ्रंश की साहित्यिक एवं छान्दसिक परम्परा का प्रतीक है। जिस प्रकार श्लोक का नाम लेने पर संस्कृत और गाथा का नाम लेने पर प्राकृत का बोध होता है ठीक उसी प्रकार 'दोहा' के नाम के साथ अपभ्रंश का साहित्यिक रूप जुड़ा हुआ है। ये दोहे बड़े मार्मिक और सरस हैं। हेमचन्द्र के 'प्राकृत व्याकरण' में संगृहीत इन अपभ्रंश के दोहों में एक नवीन चेतना की गूँज है—

जिवं तिवं बंकिम लोअणहं णिरु सामलि सिक्खेइ।
तिवं तिवं वम्महु निअय-सर खर पत्थरि तिक्खेइ॥

[वह सांवली ज्यों-ज्यों अपने नेत्रों को वक्र करना सीखती है त्यों-त्यों कामदेव अपने तीरों को खरे पत्थर पर तीखा करता जाता है।]

वायसु उड्डावंतिअए पिउदिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड़त्ति॥

[कौवे को उड़ाती हुई विरहिणी ने सहसा अपने प्रिय को देखा। (उसकी) आधी चूड़ियाँ धरती पर गिर गयीं और आधी तड़ तड़ाकर फूट गयीं]।

हिअइ खुडुक्कइ गोरडी गयणि घुडुक्कइ मेहु।
वासा रत्ति पवासुअहं विसमा संकडु एहु॥

[हृदय में गोरी (की सुधि) खटकती है और आकाश में मेघ घुड़क रहे हैं, बरसात की रात में प्रवासियों के लिये यह बड़ा विषम संकट है]।

जहिं कप्पिज्जइ सरिण सरु, छिज्जइ खग्गिण खग्गु।
तहिं तेहइ भड घड निवहि, कन्तु पयासइ मग्गु॥

(जहाँ बाणों से बाण कटते हैं, तलवार से तलवार टकराती है, उसी भदघटा समूह में मेरा प्रिय मार्ग प्रकाशित करता है ।)

चौपाई और अरिल्ल छन्द--इसी प्रकार अपभ्रंश साहित्य में चौपाइयाँ भी अनेक हैं पर उनकी संख्या उतनी नहीं है जितनी इन दोहों की है । ऊपर छन्दों की परम्परा पर विचार करते समय हम यह देख चुके हैं कि अपभ्रंश साहित्य में अरिल्ल नाम का एक छन्द है जिसे चौपाई का पूर्व रूप कहा जा सकता है । इस अरिल्ल छन्द और चौपाई में मात्राएँ तो एक सी ही होती हैं यानी दोनों में सोलह होती हैं पर इनमें मूल भेद है अन्त की मात्राओं का । चौपाई के अन्त में दो गुरु (ऽऽ) का व्यवहार किया जाता है परन्तु अरिल्ल के अन्त में दो लघु (।।) आते हैं । अरिल्ल का एक उदाहरण इस प्रकार है-

अहो महो अज्जु नाउँ सुहुयत्तउ ।
जं एवहु महत्तणु पत्तउ ॥
--भविसयत्त कहा, १६।३।१३

हिन्दी साहित्य में भी इस तरह की लघुवन्त चौपाइयाँ मिल जाती हैं पर वे अपवाद हैं-

कह दस कंध कवन तैं बन्दर ।
मैं रघुवीर दूत दसकंधर ॥ -मानस

उपर्युक्त अरिल्ल छन्द विकसित होकर परवर्ती अपभ्रंश साहित्य में आया है । जैन कवियों के प्रबन्ध काव्यों में चौपाई का कुछ परिष्कृत रूप देखने को मिल जाता है-

हा लक्खण कुमार एक्कोयर ।
हा भद्दिय उव्विद दामोदर ॥
हा माहव महुमह महुसूयण ।
हा हरि-कण्ह-विण्ह नारायण ॥ -स्वयंभू रामायण

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश साहित्य में दोहे और चौपाइयों की रचना पर्याप्त मात्रा में हुई है। परन्तु, इन छन्दों का मूल स्रोत क्या है?

दोहे और चौपाई की उत्पत्ति का मूलस्रोत : लोक कण्ठ--अपभ्रंश भाषा और उसके साहित्य का काल निर्णय करते समय विद्वानों ने परोक्ष रूप से इस सम्बन्ध में चर्चा की है। अपभ्रंश की सबसे पहली स्थिति की सूचना भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में उकार बहुला आभीरोक्ति के रूप में दी है। परन्तु उन्होंने स्पष्ट रूप से अपभ्रंश नाम का उल्लेख नहीं किया है। इसके पश्चात् अपभ्रंश के कुछ पद (लगभग ५वीं शताब्दी में) कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' में मिलते हैं। ये पद बिल्कुल टकसाली अपभ्रंश के हैं–

महं जाणिअं मिअ लोअणी, णिस अरु कोइ हरेइ।
जावणं णवतालं सामल, धारा हरु वरिसेइ॥[1] वि० ४।८

[मैंने जाना था कि मृग के समान नेत्रों वाली मेरी प्रिया को कोई राक्षस हर कर लिये चला जा रहा है। (पर, यह मेरी भूल थी, इसे मैंने तब समझा) जब नवीन विद्युत से युक्त काले मेघ बरसने लगे]।

रे रे हंसा किं गोइज्जइ। गइ अणु सारे मइं लक्खिज्जइ॥
कइं पइं सिक्खिउ ए गइ लालस। सा पइं दिट्ठी जहण मरालस॥[2]
—वि० ४।३२

---

१. पं० सीताराम चतुर्वेदी, 'कालिदास ग्रन्थावली', द्वितीय खण्ड, पृ० २१६।

२. प० सीताराम चतुर्वेदी, कालिदास ग्रन्थावली, द्वितीय खण्ड, पृ० २२३।

(अरे हंस ! तुम छिप क्यों रहे हो ? तुम्हारी चाल से ही मैं सब कुछ समझ गया । बताओ, तुमने यह सुन्दर चाल कहाँ से सीखी है ? तुमने नितम्बों के भार से धीरे-धीरे चलने वाली उस प्यारी को अवश्य ही देखा है !)

इन दोनों छन्दों में से पहला तो स्पष्ट रूप से 'दूहा' या 'दोहा' है और दूसरा चौपाई का अर्ध विकसित रूप है । इन छन्दों में हमें शुद्ध परिनिष्ठित अपभ्रंश का रूप मिलता है । पर कालिदास न तो अपभ्रंश के कवि थे और न तो उन्होंने किसी अन्य नाटक में ही इस प्रकार के छन्दों का समावेश किया है । इसलिये कुछ विद्वानों को इनकी प्रामाणिकता पर अचानक विश्वास नहीं होता । याकोबी महोदय और श्री एस० पी० पण्डित [1] इन छन्दों को कालिदास रचित या कालिदास कालीन रचना नहीं मानते । इनके अनुसार ये पद बाद के प्रक्षिप्त अंश हैं ।

इन विद्वानों के प्रतिकूल डा० ए० एन० उपाध्ये,[2] डा० ग० वा० तगारे, डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और डा० पी० एल० वैद्य इन छन्दों को प्रामाणिक एवं कालिदास-कालीन रचना मानते हैं । इस सम्बन्ध में डा० पी० एल० वैद्य का मत उल्लेखनीय है—

"उन छन्दों को कालिदास-रचित न मानकर यदि तत्कालीन लोक भाषा का कोई प्रचलित गीत मान लें और यह अनुमान कर लें कि कालिदास ने अवसर के उपयुक्त समझ कर उन्हें कुछ संशोधित रूप में ग्रहण कर लिया तो कोई कठिनाई नहीं होती ।"[4] इसी प्रकार

---

१. श्री एस० पी० पण्डित, 'विक्रमोर्वशीय की भूमिका' ।
२. डा० ए० एन० उपाध्ये, 'परमात्म प्रकाश की भूमिका', पृ० ५६ ।
३. पुरुषार्थ (पत्रिका) जून १९४२ ।
४. नामवर सिंह, 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग', पृ० १४ ।

वक्रमोर्वशीय में प्रयुक्त दोहे की प्रामाणिकता पर प्रकट किये गये प० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के ये विचार महत्वपूर्ण हैं–

"यदि जंगल में भटकते हुए प्रिया विरह से व्याकुल राजा के प्रलाप में कवि ने तत्काल प्रचलित ग्राम्य-जन के पदों में से एकाध पद्य कहलवा दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं.....यह कह सकना कुछ कठिन ही है कि आभीर या अहीर जाति से इस छन्द का क्या सम्बन्ध था। नाट्यशास्त्र में कथित जिस प्रकार बहुला भाषा को आभीरों से सम्बन्धित किया गया है, वह अपभ्रंश ही थी..... आधुनिक अहीरों के अत्यन्त विरहागान का स्रोत मूलतः दोहा छन्द ही है।"[1]

प्रस्तुत लेखक भी डाक्टर वैद्य और डाक्टर द्विवेदी के मतों से पूर्णतः सहमत है। अपभ्रंश लोक-भाषा थी। संस्कृत के रूढ़िबद्ध और मृत-प्राय हो जाने पर उसका उत्थान एक ऐसी नवीन एवं लोकव्यापी चेतना के बल पर हुआ था जिसका मूल आधार था लोकस्वर। इस लोकस्वर ने जहाँ नूतनता के लिये जन-जीवन की नवीन भावनाएँ, लोक भाषा का नवीन शब्दकोश एवं लोक-जीवन की कथा कहानियाँ अपनाईं वहाँ यह आश्चर्य नहीं कि इसने इन मात्रिक एवं नये प्रकार के छन्दों को भी तत्कालीन लोक गीतों की मौखिक परम्परा से ही लिया हो। कालिदास द्वारा प्रयुक्त छन्द वस्तुतः लोक-छन्द हैं। अपभ्रंश साहित्य में भी दोहा और चौपाई के इन मात्रिक छन्दों का प्रयोग लोक-छन्दों के आधार पर ही किया गया है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं–

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', पृ० ६२।

(१) दोहे और चौपाई में आख्यानक काव्य लिखने वाली शैली अपभ्रंश की है। वह सूफ़ी कवियों की अपनी निजी वस्तु नहीं।

(२) विक्रमोर्वशीय में प्रयुक्त दोहे और चौपाई वाले छन्द अपभ्रंश के प्राचीनतम (पाँचवी सदी के) छन्दों में से हैं।

(३) ये दोनों छन्द संस्कृत के वर्णिक छन्दों से भिन्न मात्रिक एवं गेय हैं। इनकी उत्सभूमि कालिदास-कालीन लोक-गीत हैं। यानी ये छन्द लोक-छन्द हैं।

(४) इसलिये-पद्मावत में व्यवहृत दोहे और चौपाई के छन्द मूलतः लोक-छन्द हैं। यद्यपि पद्मावतकार के सम्मुख इनकी बहुत बड़ी साहित्यिक परम्परा थी फिर भी ये लोक छन्द ही कहे जायेंगे।

(४) अलंकार योजना

अलंकारों में सादृश्यमूलक उपमाओं, रूपकों और उत्प्रेक्षाओं का महत्व सबसे अधिक है। उपमेय और उपमानों की साम्य एवं सादृश्य भावना के आधार पर ये अलंकार रूप और भाव की व्यंजना करने में सबसे अधिक समर्थ होते हैं। उपमेय के सौन्दर्य की गाढ़ अभिव्यक्ति कराने के लिये जब कवि जन-सामान्य की भाषा से थोड़ा ऊपर उठ कर उपमानों का सहारा लेता है—तब हमारे सन्मुख रूप की एक जीवन्त प्रतिमा साकार हो उठती है—

नयम जो देखा कंवल भा, निरमल नीर सरीर।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नगहीर॥

(सरोवर में खिले हुए कमल के पुष्पों ने सुन्दरी के निर्मल नेत्र देखे तो उनका शरीर उज्ज्वल हो गया। हंसों ने उसकी धवल मुस्कान देखी तो उनकी आभा निखर उठी और मोतियों एवं हीरों ने जब उसकी बिजली जैसी मुस्कान देखी तो उनमें और भी ज्योति आ गई)। यहाँ वैसे तो तद्गुण अलंकार है पर नयन, शरीर, मुस्कान और दन्त-पंक्तियों के चिर परिचित उपमानों द्वारा, परोक्ष रूप से उपमेय की ही सौन्दर्याभिव्यक्ति की गयी है।

काव्य के आवश्यक उपादान के रूप प्रायः सभी कवियों ने विभिन्न अलंकारों को अपनी अभिव्यक्ति में स्थान दिया है। जायसी भी एक रस-सिद्ध कवि थे। इसलिये इनकी रचनाओं में अलंकारों का समावेश स्वाभाविक है। परन्तु, मध्ययुग के प्रायः सभी कवियों की भांति इन्होंने अलंकारों की अनावश्यक ठूँस-ठाँस नहीं की है। काव्य रस के स्वाभाविक प्रवाह में जो अलंकार आ गये हैं सो आ गये हैं। उनकी योजना के लिये कवि की ओर से कोई आग्रह नहीं है।

यहाँ हम पद्मावत के उपमान रूपों पर ही विचार कर रहे हैं। सुविधा की दृष्टि से पद्मावतकार द्वारा प्रयुक्त उपमानों को दो कोटियों के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है—

(१) नखशिख वर्णन से सम्बन्धित उपमान

(२) अन्य विषयों के वर्णनों से सम्बन्धित उपमान

इनमें से प्रत्येक दो प्रकार के हैं—

(१) प्रकृति के लिये हुए उपमान

(२) अन्य सांसारिक वस्तुओं के उपमान

प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय की दृष्टि से इन उपमानों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) साहित्यिक परम्परा के रूढ़िगत उपमान,

(२) लोक-जीवन से लिये गये नवीन मौलिक उपमान।

(१) नखशिख के उपमान—'पद्मावत' में नखशिख वर्णन कई स्थलों पर हुआ है। सबसे पहले 'जन्म खण्ड' में जब पद्मावती युवा होती है तब कवि को एक संक्षिप्त नखशिख वर्णन का अवसर प्राप्त हुआ है—

मैं उनंत पद्मावति बारी। रचि रचि बिधि सब कला संवारी॥
जग बेधा तेहि अंग सुबासा। भंवर आइ लुबुधे चहुँ पासा॥
बेनी नाग मलयगिरि पैठी। ससि माथे दूइज होइ बैठी॥
भौंह धनुक साधे सर फेरैं। नयन कुरंग भूलि जनु हेरैं॥
नासिक कीर कंवल मुख सोहा। पद्मिनि रूप देख जग मोहा॥
मानिक अधर दसन जनु हीरा। हिय हुलसै कुच कनक जंभीरा॥[1]
केहरि लंक गवन गज हारे। सुरनर देखि माथ भुइं धारे॥

जग कोइ दीठि न आवै, आछहि नैन अकास।
जोगि जती सन्यासी, तप साधहिं ओहि आस॥

प्रस्तुत स्थल पर कवि ने निम्नलिखित उपमानों की योजना की है—

शरीर—सुगन्धपूर्ण (कोई पुष्प या पुष्पित लता)

केशकलाप—नाग

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रन्थावली' में 'कनक गम्भीरा' पाठ मिलता है और डा० माताप्रसाद गुप्त के सम्पादन में 'कनकजंभीरा' पाठ मिलता है। परवर्ती पाठ शुद्ध और सार्थक है। लेखक ने यहाँ उसी का प्रयोग किया है।

ललाट	द्वितिया का चाँद
भौंह	धनुष
(बरुनी)	तीर
नयन	मृग
नासिका	शुक
मुख	कमल
अधर	माणिक्य
दन्त	हीरा
कुच	सोने के नीबू
कटि	केहरि-लंक
चाल	गज-गति

ये उपमान–

(१) रूप साम्य, वर्ण साम्य और गुण साम्य पर आधारित हैं।

(२) परम्परागत और रूढ़ हैं।

(३) अधिकांश प्रकृति के हैं।

इसी प्रकार अन्य कई स्थलों पर पद्मावतकार ने नखशिख वर्णन की रूढ़ि का पालन किया है। इनमें से कुछ प्रमुख स्थल ये हैं–

(१) रत्नसेन को मोहित करने के लिये हीरामन शुक द्वारा किया गया वर्णन।

(२) नागमती–पद्मावती विवाद खण्ड में स्वयम् नागमती और पद्मावती के मुख से किया गया उनका अपना रूप वर्णन।

(३) सुल्तान अलाउद्दीन के सम्मुख राघव चेतन द्वारा किया गया पद्मावती का रूप-वर्णन।

सामूहिक रूप से इन सभी स्थलों पर प्रयुक्त शरीर के विभिन्न अंगों-उपांगों के प्रमुख उपमानों को इस प्रकार गिनाया जा सकता है–

केश	नाग, नागिन, भ्रमरावलि, कस्तूरी, प्रेम की साँकल, और यमुना तरंग।
माँग	सरस्वती की धार, वीर बधूटियों की पंक्ति, पन्थ, दामिनी, रक्तरंजित तलवार की धार, कंचन रेखा।
ललाट	द्वितीया का चाँद, सूर्य।
भौंह	धनुष।
नयन	खञ्जन, मृग, तुरंग, कमल, भ्रमर।
बरुनी	बाण।
नासिका	शुक, तलवार, सेतु।
अधर	बिम्ब, विद्रुम, माणिक्य, दुपहरी का फूल।
दाँत	दाड़िम, दामिनी, हीरा।
कपोल	कमल, नारंगी, लड्डू, गेंद।
तिल	भ्रमर, घुंघची, विरह की चिनगी, अग्निबाण, ध्रुव।
कान	सीपी।
मुख	कमल, चन्द्रमा।
ग्रीवा	कम्बु, मयूर, तुरङ्ग, परेवा, सुराही।
भुजा	कनक दण्ड, कदलि गाभ, चन्दन खम्भ।
उरोज	कंचन बिल्व, युग्म श्रीफल, कञ्चन के लड्डू, सोने के नीबू।
रोमावलि	सर्पिणी, भ्रमरावलि, यमुन धार।
कटि	भृङ्ग, केहरि, कमल-नाल।
नाभि	गहरी भँवर।
पीठ	मलयागिरि।
उरु	केला के खम्भे।
चरण	कमल।
चाल	हंस-गति, गज-गति।

सम्पूर्ण शरीर—कनक लता, चम्पक लता, पुष्पित लता।

नखशिख वर्णन से सम्बन्धित ये सभी उपमान अधिकांश प्रकृति से लिये गये हैं। अन्य सांसारिक वस्तुओं से सम्बन्धित उपमानों की संख्या बहुत कम है; यथा—

माँग के लिये तलवार की धार, नासिका के लिये तलवार और सेतु, एवं उरोज के लिये कंचन के लड्डू और लटटू।

प्रस्तुत सभी उपमान प्रायः परम्परा के घिसे घिसाये रूढ़ रूप हैं। काव्य में स्त्री रूप का वर्णन कवियों का एक अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। इस दृष्टि से इस देश के प्राचीन अलंकार शास्त्रियों ने स्त्री रूप से सम्बन्धित कुछ रूढ़ियाँ निश्चित कर दी हैं। पण्डित हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' नामक ग्रन्थ में 'स्त्री रूप' की इन विभिन्न रूढ़ियों पर विस्तार के साथ विचार किया है। केशों के रूढ़िगत उपमानों पर विचार करते हुए पण्डित जी लिखते हैं— "गोवर्द्धन के मत से केशों में दीर्घता, कुटिलता, लघुता, निविड़ता, और नीलिमा आदि गुण वर्णित किये जाने चाहिए।.....दैवज्ञ कामधेनु के मत से सूक्ष्म और नील रोम सौभाग्य के लक्षण हैं। इन गुणों को बताने के लिये कवियों में साधारणतः निम्नलिखित उपमाएँ रूढ़ हैं। अन्धकार, शैवाल, मेघ, मयूर-पुच्छ, भ्रमर-श्रेणी, चामर, यमुना, तरंग, नीलमणि, नील-कमल, आकाश, धूप का धुआँ इत्यादि। केश की वेणी के लिये साधारणतः सर्प, तलवार, भ्रमर पंक्ति और धमिल्ल या जूड़े के लिये राहु की उपमाएँ प्रसिद्ध हैं। केश के बीचो बीच की माँग के लिये रास्ता, दण्ड, गंगधार आदि उपमाएँ दी जाती हैं।"[1] इसी प्रकार काव्य शास्त्रों में स्त्री के अंगों और उपांगों से सम्बन्धित अनेकानेक उपमाएँ निश्चित कर दी गयी हैं और वे साहित्य में आकर रूढ़ि बन गयी हैं।

---

१. पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ० २६३।

मलिक मुहम्मद जायसी अपने पद्मावत के नखशिख वर्णनों में इन काव्य शास्त्रीय उपमान रूढ़ियों से बहुत दूर नहीं जा सके हैं। उदाहरण के लिये यहाँ केश सम्बन्धी उपमाएँ लें–

भौर केस वह मालति रानी।
बेनी नाग मलय गिरि पेठी।
लहरैं देइ जनहु कालिंदी।
जानहुँ लौटहिं चढ़े भुअंगा।

यहाँ केशों के लिये भ्रमर, सर्प और यमुना की लहरों के रूढ़ उपमान ही व्यवहृत हुए हैं। इसी प्रकार अन्य अवयवों से सम्बन्धित उपमानों को लिया जा सकता है।

कुछ स्थलों पर कवि ने थोड़ी स्वतन्त्र कल्पना का सहारा लिया है। इन स्थलों के उपमान परम्परागत उपमाओं की सीमित परिधि से कुछ मुक्त जान पड़ते हैं। ये उपमान प्रकृति से कम चुने गये हैं–यथा–

सिंदूर भरी माँग के लिये	खाँडै धार रुहिर जनु भरा।
बरुनियों के लिये	जुरी राम रावन कै सेना।
कपोलों के लिये	केइ यह सुरंग खखौरा बांधे।
घुंघराले बाल	संकरै प्रेम चहैं गिउपरी।
ग्रीवा के लिये	गीउ सुराही कै अस भई।
कुचों के लिये	जानहु दोउ लटू एक साथा।

ऐसे वर्णनों में प्रयुक्त खांड़े के लड्डू, सुराही, लटटू और घुंचची आदि की उपमाएँ लोक-जीवन की कही जा सकती हैं। पर इन उपमानों द्वारा कवि अपनी सौन्दर्याभिव्यक्ति में उतना सफल नहीं हो पाया है जितना वह काव्य शास्त्र के रूढ़िगत उपमानों से हो सका है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नखशिख वर्णन में लोक-उपमानों की योजना की दृष्टि से पद्मावतकार असफल रहा है। जिस

प्रकार उसने नखशिख वर्णन द्वारा एक कवि कर्तव्य निभाया है ठीक उसी प्रकार उपमानों के चुनाव में भी उसने रूढ़िगत उपमानों का सहारा लिया है। यहाँ हमें किसी लोक-भावना या मौलिकता का दर्शन नहीं होता। सारा वर्णन काव्यात्मक तो है परन्तु लौकिक नहीं।

(२) अन्य प्रकार के वर्णनों से सम्बन्धित उपमान–

नखशिख वर्णन के उपमानों की अपेक्षा अन्य प्रकार के वर्णनों में प्रयुक्त उपमानों के चयन में कवि की लोक-दृष्टि का अच्छा परिचय मिलता है। वैसे तो इस कोटि के अन्तर्गत भी उपमानों की कमी नहीं है जो साहित्यिक परम्परा से सम्बद्ध हैं। पर ऐसी उपमाएँ भी पर्याप्त मात्रा में व्यवहृत हुई हैं जो कवि की मौलिक कल्पना से उद्भूत जान पड़ती हैं। इन उपमाओं का विधान लोक-जीवन की स्वच्छन्द भावनाओं के आधार पर किया गया है। यहाँ कवि ने अपने आदृश्यमूलक अलंकारों के लिये जिन उपादानों को चुना है वे लोक परिचित हैं। चाहे प्रकृति के उपमान हों, चाहे अन्य सांसारिक वस्तुओं के, अधिकांश लोक उपमान हैं।

इस कोटि के उपमानों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(१) भाव वर्णन के उपमान।

(२) वस्तु वर्णन के उपमान।

भाव वर्णन के उपमान––इस कोटि के उपमानों द्वारा कवि ने मानवीय भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। उपमाओं, रूपकों, उत्प्रेक्षाओं एवं दृष्टान्तों आदि के माध्यम से, उसने मानव हृदय की विविध रागात्मक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अंकन किया है। यहाँ हम कुछ ऐसे उदाहरण दे रहे हैं, जिनमें कवि ने अपनी सशक्त व्यंजनाओं के लिये केवल लोक उपमानों की सहायता ली है–

कवि वियोगिनी नागमती के हृदय की उपमा 'पी' 'पी' रटने वाले पपीहे से देता है–

पिउ वियोग अस बाउर जीऊ।
पपिहा निति बोलै पिउ पिऊ।

प्रस्तुत चौपाई का सारा सौन्दर्य उसकी उपमान योजना पर ही निर्भर करता है। यह उपमा लोक-गीतों के वातावरण के उपयुक्त है–

पिया पिया रटके मैं हो गई पपिहरा।

इसी प्रकार नागमती की विरह भावना की व्यंजना से सम्बन्धित उपमाओं के लिये कुछ अन्य चौपाइयाँ ली जा सकती हैं–

रकत कै आँसु परहिं भुइं टूटी।
रेंगि चलीं जस बीर बहूटी।
... ...
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा।
विरह झुलाई देइ झकझोरा।
... ...
बरसै मघा झकोरि झकोरी।
मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी॥
... ...
नैन चुवहिं जस मघवट नीरू।
तोहि बिन अंग लाग सर चीरू॥
... ...
तन जस पियर पात भा मोरा।
तहि पर विरह देइ झकझोरा॥
... ...
लागिऊं जरै जरै जस भारू।
फिरि फिरि भूंजेसि तजेऊं न बारू॥

प्रस्तुत उद्धरणों की सभी उपमाएँ लोक-उपमाएँ हैं। विरहिणी नागमती की आँखों से अश्रु के बहाने लोहू टपक कर धरती पर गिर रहा है तो ऐसा मालूम हो रहा है मानो बरसात के खेती में लाल बीर-बहूटियों की लम्बी कतार हो। विरह की आधियों में नागमती का हृदय हिंडोला बन गया है। वह उसी प्रकार झोंके खा रहा है जैसे गाँव में नीम और आम की डाल पर पड़े हुए झूले। झकोर कर बरसते हुए मघा नक्षत्र में विरहिणी की आँखें ओरी बन गई हैं। प्रिय विछोह के दुःख से संतप्त शरीर ऐसा जान पड़ता है मानो पतझर का पीला पत्ता हो, जिसे गिरा देने के लिये विरह की तेज हवा झकझोर रही है और.....वियोगिनी, वह तो ऐसी जान पड़ रही है जैसे कि भड़भूजे की जलती हुई भरसाई। वह उस अनाज के दाने की भाँति है जो भाड़ की तप्त बालुका में उछल-उछल कर फिर उसी में रह जाता है। इस प्रकार नागमती के विरह-वर्णन की करुणा की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिये पद्मावतकार ने लोक-उपमानों का सहारा लिया है। विरह संतप्त शरीर की उपमा पतझर के पीले पत्ते से और रोती हुई आँखों की उपमा टपकती हुई छप्पर की ओरी से देकर, कवि परम्परा प्रचलित उपमानों को छोड़, लोक हृदय की स्वच्छन्द भावनाओं को छू गया है।

विरह वर्णन से सम्बन्ध रखने वाले उपर्युक्त सभी उपमान प्रायः प्रकृति के हैं। इस क्षेत्र में पद्मावतकार ने लोक-जीवन के अन्य वस्तुओं से भी अपनी उपमाएँ चुनी हैं। एक स्थान पर वह वियोगिनी पद्मावती के शरीर की उपमा कड़ाही में जलते हुए घी से देता है।

दगधि कराह जरै जस घीऊ। बेगि न आव मलय गिरि पीऊ॥

जिस प्रकार वियोग शृङ्गार के वर्णन में लोक उपमानों का सहारा लिया गया है उसी प्रकार संयोग वर्णन में भी लोक-चित्रों की सादृश्य-मूलक अवतारणा की गई है। रत्नसेन के सिंहल से वापस लौट आने

पर जायसी ने नागमती की उपमा एक ऐसी फुलवारी से दी है जिसकी लताओं में अभी अभी कोपलें आई हैं–

जस भुंइ दहि असाढ़ पलुहाई।
परहिं बूँद औसोंध बसाई।
ओहि भांति पलुही सुख बारी।
उठी करिल नइ कोंप संवारी॥

इसी प्रकार संयोगकालीन उपालम्भ के लिये नागमती का यह दोहा प्रसिद्ध है–

काह हँसौ तुम मोसौं किएउ और सों नेह।
तुम मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरसै मेह॥

यह उलाहना रत्नसेन के सिंहल से लौट आने पर एवं उसे प्रसन्न चित्त देखकर नागमती देती है। इस छन्द की सारी मार्मिकता उपमानों में है। पद्मावतकार ने नागमती की अश्रु-धार की उपमा मेंह से और रत्नसेन की मुसकान की उपमा बिजली से दी है। अनेक स्थानों पर कवि ने लोक दृष्टान्तों द्वारा भावों की सजीव व्यंजना की है–

मुहमद बाजी पेम की ज्यों भावै त्यों खेल।
तिल फूलहि के संग ज्यों होइ फुलाइल तेल॥

तिल और पुष्प अपने पारस्परिक संयोग से सुगन्धिपूर्ण तेल का निर्माण करते हैं। कवि ने इस एक सम्पूर्ण भाव को प्रेम का उपमान बनाया है। प्रेम के आलम्बन और आश्रय का मिलन भी ऐसा ही होना चाहिये। तभी वह एक चिर-स्थायी सौरभ बिखेर सकता है।

वस्तु वर्णन के उपमान—भाव व्यंजना से सम्बन्धित उपमानों पर विचार कर लेने के पश्चात् हमारे सामने वे उपमान आते हैं जिनका व्यवहार अन्य प्रकार की वस्तुओं के वर्णन में हुआ है। इन वर्णनों

में भी कवि ने बहुत से लोक-उपमानों की सहायता से अपने चित्रों की की गाढ़ अनुभूति कराने का प्रयत्न किया है। समुद्र में चलते हुए जहाज़ों की तेज़ और धीमी गति को देखकर उनके लिये अत्यन्त उपयुक्त उपमान दिये गये हैं।

कोई जस भल धाव तुखारू।
कोई जैस बैल गरियारू॥

कोई जहाज़ तो घोड़ों जैसा है। क्योंकि वह तेजी से भागा जा रहा है और कोई कोई बिल्कुल गरियार बैल की तरह से है।

'उदधि-समुद्र' के खौलते हुए पानी की उपमा कड़ाहे में उबलते हुए तेल से दी गई—

तलकै तेल कराह जिमि, इमि तलकै सब नीर।

सागर में डूब जाने के पश्चात् किनारे पर बह कर लगी हुई बेहोश पद्मावती की उपमा के लिये सुगन्धि युक्त सूखे फूल का उपमान बहुत ही सफल कहा जा सकता है—

जौ देखा तिवई कै सांसा।
फूल मुवा, पै मुइ न वासा।

कहीं-कहीं अत्यन्त प्रसिद्ध लोकोक्तियों का व्यवहार भी उपमान रूप में किया गया है। नागमती भावी सौत की आशंका के कारण अपने स्वामी के प्रिय हीरामन शुक की उपमा उस वजनी कर्णफूल से देती है जिसके पहनने से कान लटक कर टूट जाता है—

माथे नहिं बैसारिय जौ सूठि सुआ सलोन।
कान टुटै जे पहिरे का लेइ करब सो सोन॥

यहाँ कवि ने 'फाट परै ओहि सोना, जेहि से टूटै कान', वाली कहावत को दृष्टान्त रूप में लिया है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पद्मावत में नखशिख वर्णन से सम्बन्धित उपमान प्रायः परम्परागत और रूढ़ हैं किन्तु भाव वर्णन और वस्तु वर्णन से सम्बन्धित बहुत से उपमान लोक जीवन से लिये गये हैं।

चौथा अध्याय

काव्य पक्ष

प्रकृति चित्रण का लोक रूप

बरसै मघा झकोर झकोरी।
मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी॥

—पद्मावत (जायसी)

(१) काव्य और प्रकृति

सृष्टि के आदिकाल से ही प्रकृति मानव की सहचरी रही है। प्रकृति के विभिन्न नयनाभिराम रूपों ने मानव हृदय को सौन्दर्यानुभूति एवं मस्तिष्क को भावनापूर्ण चिंतन का विस्तार दिया है। ऐसी दशा में, काव्य—जो हृदय और मस्तिष्क की समन्वित अभिव्यक्ति है—प्रकृति से अछूता नहीं रह सका है।

(२) हिन्दी साहित्य और प्रकृति

हमारे देश में प्रकृति वैदिक काल से ही साहित्य का एक अंग बन कर आई है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य इस प्रकृति देवि के सम्मुख श्रद्धा से नत मस्तक, आश्चर्य से विस्मित एवं भय से विनम्र रहा है। संस्कृत साहित्य के स्वर्ण-काल में महाकवि कालिदास के हाथों से सज-सँवर कर प्रकृति एक अनन्य सुन्दरी के रूप में अवतरित हुई है। हिन्दी साहित्य ने काव्य की वस्तु-गत एवं शैली-गत बहुरूपी रूढ़ियों के साथ साथ संस्कृत साहित्य से प्रकृति वर्णन की परम्परा भी प्राप्त की है; परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि हमारे साहित्य में संस्कृत के प्रकृति वर्णन एवं तत्सम्बन्धी शास्त्रीय रूढ़ियों को ज्यों का त्यों अपना लिया गया है। यहाँ हम अपभ्रंश साहित्य की कुछ नवीन स्वच्छन्द प्रवृत्तियों एवं लोक-गीतों की उन्मुक्त भावनाओं का भी संगम पाते हैं। मध्य

कालीन हिन्दी साहित्य में प्रकृति के इन रूढ़ि-मुक्त एवं स्वच्छन्द लोक-रूपों का अच्छा विकास हुआ है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्य ऐसी ही विशाल लोक-भावना की उन्मुक्त भूमि पर आधारित है।

(३) पद्मावत में प्रकृति

पद्मावत पर कथानक एवं काव्य कला की दृष्टि से विचार करते समय हम देख चुके हैं कि इस काव्य का मूल स्रोत लोकवार्ताओं (फ़ोक लोर) में है। ठीक इसी प्रकार पद्मावतकार ने अपने प्रकृति-वर्णन में अनेकानेक लोक भावनाओं एवं लोक जीवन के चित्रों को चित्रित किया है। उसकी प्रकृति चित्रण सम्बन्धी ऐसी उक्तियाँ ग्राम्य जीवन की ठेठ धरती से निकली जान पड़ती हैं। वे संस्कृत साहित्य की प्रकृति चित्रण सम्बन्धी रूढ़िबद्ध परम्परा के साथ, लोक गीतों और लोक उपमाओं का भी प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी परम्परा उस अपभ्रंश साहित्य से एकदम सीधे चली आ रही है जो जन-जीवन का साहित्य रहा है और जिसमें संस्कृत का जबर्दस्त विद्रोह मुखरित हुआ है।

(४) हिन्दी साहित्य में प्रकृति के रूप

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रायः सभी कवियों ने अपनी कृतियों में प्रकृति को थोड़ा बहुत स्थान दिया है। सभी कवियों के प्रकृति सम्बन्धी विविध चित्रों को सामूहिक रूप से कुछ स्थूल विभाजनों के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है।

(१) आलम्बन के रूप में किया गया प्रकृति चित्रण
(२) उद्दीपन के रूप में ... ...
(३) अलंकरण ... ...
(४) मानवीकरण सम्बन्धी प्रकृति के खण्ड चित्र
(५) नीति और उपदेशों के लिये उदाहरण रूप में प्रकृति और
(६) आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के लिये किया गया प्रकृति चित्रण।

इनमें से प्रकृति चित्रण के प्रथम तीन रूप प्रमुख हैं—

(१) आलम्बन रूप
(२) उद्दीपन रूप
(३) अलंकरण रूप

शेष तीनों रूपों का समावेश इन्हीं की परिमित में आबद्ध हो जाता है।

विचार्य विषय की दृष्टि से इन तीन रूपों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) संस्कृत काव्य शास्त्र की साहित्यिक परम्परा से संबद्ध प्रकृति चित्रण, और
(२) लोक भावनाओं पर आधारित एवं जन-जीवन की उन्मुक्त चिंतन शैलियों से संबद्ध प्रकृति चित्रण।

पद्मावत में प्रकृति चित्रण के लोक रूप (फोक पिक्चर्स) पर विचार करते समय हम इस दूसरी कोटि के अन्तर्गत आनेवाले विविध रूपों का मूल्यांकन करेंगे।

(५) आलम्बन रूप

काव्य में आलंबन रूप में चित्रित होने पर प्रकृति साधन के स्थान पर साध्य हो जाती है। ऐसी दशा में कवि प्रकृति के किसी खण्ड या

विराट रूप को जम कर अंकित करने में संलग्न हो जाता है। पद्मावत में ऐसे अनेक स्थल आये हैं जहाँ हमें विस्तार के साथ प्रकृति के शुद्ध रूप का दर्शन मिलता है। ऐसे वर्णनों में पद्मावतकार जहाँ ग्रामीण वातावरण की उन्मुक्त पृष्ठभूमि में आया है वहाँ के प्राकृतिक चित्र लोक-चित्र ही कहे जायेंगे। उदाहरण स्वरूप–

कुहू कुहू करि कोइलि राखा। औ भिंगराज बोल बहु भाखा॥
दही दही कर महरि पुकारा। हारिल बिनवै आपन हारा॥
कुहुकहिं मोर सुहावन लागा। होइ कुराहर बोलहिं कागा॥

जावत पंखी जगत के भरि बैठे अमरांउ।
आपनि आपनि भाषा लेहिं दई कर नाउं॥[1]

ऊपर ऊपर से देखने वाले पाठक को प्रकृति का प्रस्तुत चित्र विभिन्न पक्षियों की सूची मात्र जान पड़ेगा। परन्तु लोक जीवन की दृष्टि से यह चित्र अपने में पूर्ण है। इसका सौंदर्य वही परख सकता है जिसने कभी सघन-गदराये हुए आमों की बाग में विभिन्न पक्षियों के समूह के अर्थविहीन पर लयपूर्ण एवं आकर्षक संगीत को सुना है। ग्रामीण जीवन की भावनाओं में जब भी किसी बाग-बगीचे का चित्र आयेगा तब पक्षियों का कलरव गान भी उसकी कल्पना में गूँज उठेगा। इन पक्षियों के बिना तो बगिया का चित्र ही अधूरा रह जायगा। इस सम्बन्ध में एक लोक गीत की चार पंक्तियाँ उद्धृत हैं–

आधे बगिया मां आम बौरे आधे मां इमली बौरी,
तबहूँ न बगिया सुहावन एक रे कोइलि बिन।

---

१. 'जायसी ग्रंथावली', ना० प्र० सभा, पृ० ११।

आधी फुलवरिया गुलबवा, आधी मां केवड़ा गमकइ,
तबहूँ न फुलवा सुहावन एक रे भंवर विन ॥[1]

इसी प्रकार 'पद्मावत' में चित्रित एक तालाब के चित्र को लिया जा सकता है–

ताल तालाव बरनि नहिं जाहीं।
सूझै वार पार किछु नाहीं॥
फूलै कुमुद सेत उजियारे।
मानहुँ हुए गगन मँह तारे॥[2]

छिछली तलैया में हलरते हुए कमल, कुमुद और पुरइन-पत्र ग्राम्य जीवन का एक अनूठा चित्र उपस्थित करते हैं। लोक-गीतों में जहाँ भी ताल तलैया का वर्णन आया है वहाँ लोक-कंठ इन फूलों को नहीं भूल सका है—

आधे तलवा मां हंस चुनैं आधे मां हंसिनि।
तबहूँ न तलवा सुहावन एक रे कमल विन॥[3]

अथवा

ताल किनारे महल मोर सुन्दर,
तेहि बिच पुरइन हाले रे।
तेहि चढ़ि जोहौं नैहरवा की वटिया
मोरा नैहरवा नियरे की दूरि रे।[4]

---

१. सुश्री विद्यावती कोकिल, 'सुहाग गीत', पृ० ७६।
२. जायसी ग्रन्थावली, ना० प्र० सभा, पृ० १३।
३. सुश्री विद्यावती कोकिल, 'सुहाग गीत', पृ० ७६।
४. ए० जी० शिरेफ़, हिन्दी फोक सांग्स, पृ० ४८।

इसी प्रकार स्वतन्त्र प्रकृति रूप-वर्णन के रूप में जायसी ने अनेक ऐसी मौलिक उद्भावनाएँ की हैं जिनका तुलनात्मक अध्ययन लोक-गीतों की स्वच्छंद भावना के आधार पर किया जा सकता है। एक और उदाहरण पर विचार करके यह प्रसंग समाप्त किया जायेगा। पद्मावती के चन्द्रमुख को देखकर चकवी हैरान है और चकवे को पुकार कर कह रही है–

चकई बिछुरि पुकारै कहाँ मिलौं हो नाह।
एक चाँद निसि सरग मंह, दिन दूसर जल मांह।[1]

कवियों में यह एक परम्परागत प्रसिद्धि है कि चकवा और चकवी रात्रि में एक दूसरे से वियुक्त हो जाते हैं। जायसी ने इसी प्रसिद्धि के आधार पर उक्त दोहा लिखा है। पद्मावती के मुख चन्द्र के कारण दिन को भी रात हो जाती है और चकवा चकवी इसी भ्रम में एक दूसरे से वियुक्त हो जाते हैं। रात में पक्षी दम्पति के वियुक्त हो जाने की यह भावना लोक गीतों में भी मिलती है। राजस्थानी लोक काव्य 'ढोला मारू' में ऐसी कई उक्तियाँ आई हैं—

राति जु सारस कुरलिया, गुंजि रहे सब ताल।
जिणकी जोड़ी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल।[2]

सन्त कबीर की वाणी में भी रात को चक्रवाक दम्पति के वियुक्त हो जाने की बात आई है–

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति।

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', ना० प्र० सभा, पृ० २४।
२. 'ढोला मारू रा दूहा', ना० प्र० सभा, पृ० १७।
३. 'कबीर ग्रन्थावली', ना० प्र० सभा, पृ० ३।३।

(६) उद्दीपन रूप

काव्य में शृङ्गार रस के उद्दीपन स्वरूप प्रकृति वर्णन की एक चिरा-चरित परम्परा है। इस परम्परा का विकास लोक गीतों में भी हुआ है। विरह वर्णन के लिये बारहमासा की जो परम्परा हमारे साहित्य में मिलती है, उसकी उत्सभूमि लोक गीत ही हैं। जायसी ने अपने काव्य में दोनों ही परम्पराओं का समावेश किया है। यदि उन्होंने वियोग और संयोग शृङ्गार के वर्णन में संस्कृत साहित्य की ऋतु-वर्णन की प्रणाली को अपनाया है तो जन-गीत की बारहमासा शैली को भी लिया है।

षट् ऋतु और बारहमासा वर्णन पर हम आगे स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे। यहाँ प्रकृति के केवल उन खंड रूपों को लिया जाता है जो पद्मावत में शृङ्गार के संयोग और वियोग कालीन उद्दीपन के लिये फुटकल रूप से चित्रित हुए हैं। ये चित्र लोक भावनाओं से कहाँ तक मेल खाते हैं और कहाँ तक कवि की निजी कल्पना की उपज हैं, इस सम्बन्ध में हम प्रकृति के आलंबन रूपों की भांति इन उद्दीपन रूपों को भी लोक गीतों की पृष्ठ भूमि पर परखेंगे।

वर्षा ऋतु विरहियों और विरहिणियों को सबसे अधिक दुखदाई होती है। मघा नक्षत्र के बादल झकझोर कर बरस रहे हैं। ऐसे समय में विरहिणी नागमती की दशा का एक चित्र उल्लेखनीय है–

बरसै मघा झकोरि झकोरी।
मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी॥[1]

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', ना० प्र० सभा, पृ० १५३।

इन दो पंक्तियों का जो सौंदर्य है, उसका रहस्य है लोक भावना का जीवन्त रूप। ऐसी भावनाएँ लोक गीतों में ज्यों की त्यों मिल जाती हैं। एक कँहरवा गान की दो पंक्तियाँ तुलनीय हैं–

घेरि आये बदरा, झकोरि आई बुंदिया
तोहँका जाये न देबै हो।
टप टप टपकै मोर मड़ैया,
तोहँका जाये न देबै हो॥

—एक लोकगीत

जायसी की उपर्युक्त चौपाई और इस कँहरवा गान की मूल प्रेरणा एक ही लोक भावना है। इनमें यदि अन्तर है तो इतना ही कि एक कुशल कवि की लेखनी से सज सँवर कर आई है तो दूसरी एक अपढ़ और ग्राम्य हृदय से निःसृत स्वाभाविक उक्ति है।

इसी प्रकार 'पद्मावत' की एक प्रसिद्ध चौपाई और ली जा सकती है–

पुष्य नखत सिर ऊपर आवा।
हौं बिन नाह, मन्दिर को छावा॥[1]

चौमासा प्रारम्भ होने के पहले गाँव के कच्चे घरों की खपड़ैलों की एक बार मरम्मत कर दी जाती है, जिससे वर्षा होने पर पानी टपक कर घर के भीतर न आये। अषाढ़ लगते ही प्रत्येक गृहस्वामी इस कृत्य को पूरा कर डालता है। जिन घरों के पुरुष परदेस रहते हैं उन घरों की स्त्रियों को इस अवसर पर उनके स्वामी की याद एक बार

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', पृ० १५२।

अवश्य ही रुला जाती है। लोक जीवन का यह मर्मस्पर्शी पहलू लोक गीतों में भी अंकित हुआ है। अवधी भाषा के कुछ क्षेत्रों में गाये जाने वाले एक कजली गान की दो पंक्तियाँ इस भावना की पुष्टि करती है–

चार महीना कै बरखा पड़त हैं
हे सुन हो सजनी।
हमरे सैंया बिन बंगलवा
के छवैहैं सजनी॥

इस सिलसिले में ऊपर जायसी की जिस एक चौपाई का उद्धरण दिया गया है वह इस लोक-गीत से ज्यों का त्यों मेल खाती है।

फागुन की प्रकृति के विरहोद्दीपक रूप से सम्बन्धित जायसी की एक चौपाई और राजस्थानी लोक काव्य 'ढोला मारू' के एक वैसे ही दोहे के तुलनात्मक स्वरूप से यह बात और भी स्पष्ट होती है कि पद्मावत में प्रकृति के जिन खंड रूपों एवं क्रिया व्यापारों का अंकन हुआ है उनकी मूल प्रेरणा लौकिक है–

फागु करहिं सब चांचर जोरी। मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी।
जौ पै पीउ जरत अस पावा। जरत मरत मोहि रोष न आवा॥[1]

तुलनीय

फागुण मास वसंत रुत आयउ जइ न सुणेसि।
चाचरि कई मिस खेलती, होली झंपावेसि॥[2]

बसन्त ऋतु के फाल्गुन मास में यदि मैं तुमको आया हुआ नहीं सुनूँगी तो चर्चरी नृत्य खेलती हुई होली की ज्वाला में कूद पड़ूँगी।

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', पृ० १५५।
२. 'ढोला मारू रा दूहा', ना० प्र० सभा, पृ० १४५।

(७) उपमान रूप

लोक रूपों की दृष्टि से प्रकृति चित्रण के आलंबन और उद्दीपन वाले रूपों पर विचार कर लेने के पश्चात् हमारे सामने जो तीसरा महत्वपूर्ण रूप आता है वह है प्रकृति का अलंकार्य रूप। संस्कृत साहित्य के उद्गम काल से लेकर आधुनिक काल तक के प्रायः सभी कवियों ने अपने भावों का उत्कर्ष दिखाने के लिये प्रकृति के विभिन्न उपादानों को अलंकार स्वरूप अपनाया है। इन कवियों ने प्राकृतिक खंड रूपों की पृष्ठभूमि पर अपनी सौन्दर्यानुभूति की बड़ी गाढ़ अभिव्यक्ति की है। काव्य साहित्य में जहाँ कहीं भी इस प्रकार का प्रयत्न किया गया है वहाँ जड़ प्रकृति चेतन मानव रूपों में ढल गई है। पूनो का शशि किसी रमणी का सुन्दर मुख बन गया है और सावन के कजरारे मेघ घुंघराले केश गुच्छों के रूप में लहर उठे हैं। प्रकृति क्षेत्र से लिये गये सौंदर्य के ये उपमान साहित्य में विभिन्न रूपों में व्यवहृत हुए हैं। इनका एक परम्परानुमोदित इतिहास है। जो बहुत अंशों में रूढ़ियों द्वारा बंधकर निर्जीव हो गया है। जैसे एक ही नयन की उपमा के लिये कुछ गिने गिनाये उपमान हैं—खंजन, मीन, कमल, मृग और तरंग। पद्मावत का कवि प्रकृति के इन परम्परागत एवं रूढ़िबद्ध उपमानों से अपने को एकदम अछूता नहीं रख सका है किन्तु कहीं-कहीं उसने कुछ ऐसी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ की हैं जो हैं तो प्राकृतिक, पर कवि की अपनी मौलिक सूझ जान पड़ती हैं। ऐसे अवसरों पर ही हमें प्रकृति के उन उपमान रूपों का दर्शन मिलता है जिनकी 'स्प्रिट' लोक भूमि की है और जिनका आन्तरिक स्पन्दन लोक गीतों एवं लोक काव्यों में मिल जाता है।

उदाहरण के लिये कुछ एक प्राकृतिक उपमानों से सम्बन्धित उद्धरण लिये जा रहे हैं। एक स्थान पर नागमती के हृदय की उपमा सूखते हुए तालाब से दी गई है।

सर-वर हिया घटत नित जाई। टूक टूक ह्वै कै बिहराई॥
बिहरत हिया, करहु पिउ टेका। दीठि दँवगरा मेरवहु एका॥[1]

प्रस्तुत चौपाई में दो चित्र प्रधान हैं। एक तो पानी सूखने के साथ ही साथ तालाब की मिट्टी का फटते जाना और दूसरा पहली बरसात होने पर इन दरारों का मिलकर समाप्त हो जाना। इन दोनों चित्रों के सौंदर्य को ग्राम्य जीवन ही परख सकता है। क्योंकि वह 'बिहरते हुए सरवर हिया' और 'दवँगरा' दोनों से भली प्रकार परिचित है। पद्मावतकार ने यहाँ इन्हीं दो लोक-चित्रों को उपमान स्वरूप रख कर अपने भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। नागमती का हृदय तो बिहरता हुआ तालाब है और दवँगरा है उसके प्रिय रत्नसेन की दृष्टि। इसी प्रकार एक स्थान पर उन्मत्त यौवन की उपमा हिल्लोल भरे सागर से दी गई है—

तोर जोबन जस समुद हिलोरा।
देखि देखि जिय बूड़ै मोरा॥[2]

ऐसी उपमाएँ पद्मावतकार की अपनी निजी लोकग्राहिणी दृष्टि का परिणाम है। इनमें से प्रत्येक को लेकर लोक गीतों में उनकी परम्परा या उनके सादृश्य रूप को ढूँढ़ना तो कठिन है पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे लोक गीतों के वातावरण से अधिक मेल खाती हैं। लोक गीतों में ऐसी सरल और हृदय को स्वाभाविक रूप से छू लेने वाली उपमाएँ मिलती हैं और खूब मिलती हैं। उदाहरण स्वरूप एक लोक गीत की ये दो पंक्तियाँ ली जा सकती हैं।

---

१. 'जायसी ग्रन्थावली', पृ० १५६।
२. 'जायसी ग्रन्थावली', पृ० २७३।

ननदी तए भैया बन की कोइलिया,
आज उड़ै कि तकाहि रे।
जेठानी तए भैया कारी बदरिया,
छिन दरसै छिन घाम रे॥[1]

(८) षट-ऋतु और बारहमासा वर्णन

पद्मावत में प्रकृति के उद्दीपक रूप पर विचार करते समय हम यह देख चुके हैं कि जायसी ने दिशा में षट-ऋतु और बारहमासा वर्णन किया है। इस प्रकार ऋतु वर्णन के माध्यम से विरह निवेदन करना या संयोग वर्णन करना इस देश की एक चिराचरित प्रथा है।[2] इनसे आख्यानक काव्यों के कथानक को विकास मिला है। संदेशरासक के कवि अद्दहमाण ने इस रूढ़ि का पालन किया है।[3] पृथ्वीराज रासो के यशस्वी कवि चन्दवरदाई ने भी अपने वृहद् काव्य के ६१ वें समय में प्रत्येक ऋतु का अलग-अलग रूप खड़ा करने का भरसक प्रयत्न किया है।[4]

हिन्दी साहित्य में षट-ऋतु की परम्परा संस्कृत साहित्य से आई है। संस्कृत साहित्य में आदि कवि बाल्मीकि के रामायण से ही इस ऋतु

---

१. ए० जी० शिरेफ़, हिन्दी फोक सांग्स, पृ० ५०।
२. पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', पृ० ७४।
३. वही, पृ० ८२।
४. डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी, 'चन्दवरदाई और उनका काव्य', पृ० १०६।

वर्णन का रूप प्राप्त होने लगता है। आगे चलकर महाकवि कालिदास के 'ऋतु संहार' में इस परम्परा का विशद और भव्य रूप मिलता है।

अ. बारहमासा—बारहमासा वर्णन की परम्परा हिन्दी की अपनी निजी वस्तु है। इसमें प्रत्येक महीने की प्रकृति के अलग-अलग रूपों को लेकर विरही और विरहणियों के जीवन पर उनका विभिन्न प्रभाव दिखलाया जाता है। इस प्रकार के वर्णन की परम्परा संस्कृत साहित्य में नहीं मिलती। वहाँ छः ऋतुओं[1] की ही चर्चा आती है, बारहमासों की नहीं। बारहमासा वर्णन की परम्परा वस्तुतः लोक गीतों की है।[2]

हमारे लोक गीतों में सावन के महीने में जो बारहमासे गाये जाते हैं वे ही हिन्दी साहित्य बारहमासा के वर्णनों के मूल स्रोत हैं। इस सम्बन्ध में डा० रघुवंश का मत उल्लेखनीय है।

"बारहमासों की परम्परा का मूल जन गीतियों की उन्मुक्त भावना में है। इन गीतियों की भाव धारा में वियोगिनी की व्यथा के साथ परिवर्तित होते काल का रूप और उसकी वियोग की प्रतीक्षा मिलकर आई है। प्रत्येक मास की प्रमुख रूप रेखा के आधार पर वह अपने प्रिय को याद कर लेती है और उसके लिये विकल हो उठती है।"[3]

हमारे साहित्य में बारहमासा वर्णन आदि काल से ही मिलने लगते हैं। नरपति नाल्ह कृति 'बीसलदेव रासो' में वियोगिनी राजमती

---

१. छः ऋतुएँ—बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर।

२. लोक गीतों में पाये जाने वाले कुछ बारहमासा गानों का संकलन राहुल जी ने किया है। देखिये—आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें, पृ० ११५-२१।

३. डा० रघुवंश—'प्रकृति और हिन्दी काव्य', (मध्ययुग), पृ० ४०६।

के बारहमासे का सुन्दर वर्णन हुआ है।[1] मिथिला के लोक विख्यात कवि विद्यापति ने भी इस जन गीति शैली को अपनाया है।[2]

आ. जायसी के बारहमासे का लोक रूप—जायसी ने अपना बारहमासा वर्णन नागमती के विरहोद्दीपन की दृष्टि से किया है। किसी विरहिणी की वेदना का जैसा मर्मस्पर्शी, सरल और स्वाभाविक चित्र हमें यहाँ मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। हिन्दी साहित्य के विप्रलंभ काव्यों में नागमती के इस बारहमासे का स्थान बहुत ऊँचा है। वैसे तो और भी कई कवियों ने बारहमासा वर्णन किया है, पर उनका वर्णन कुछ रूढ़िगत चित्रों एवं उपमानों की बैसाखी लेकर ही खड़ा हो सका है। जायसी के बारहमासे की विशेषता है उसकी ताज़गी। नई-नई मौलिक उक्तियाँ एवं नये-नये उपमानों के माध्यम से व्यक्त हुए अनेकानेक चित्र इस बारहमासे को विप्रलंभ शृङ्गार के परवर्ती वर्णनों से अलग एक नूतन कोटि में स्थान देते हैं। कवि की सफलता का सबसे बड़ा रहस्य है चित्तौड़ की राजरानी को लोक-जीवन की सामान्य भूमि पर अवतरित करना। नागमती चित्तौड़ की पटरानी और महादेवी है। किन्तु, आषाढ़ लगते ही वह एक सामान्य कृषक-बाला के हृदय से सोचती है—पुष्या नक्षत्र लग गया, अब बरसात प्रारम्भ होने वाली है, पर मेरा प्रिय तो परदेश में है। मेरी टूटी फूटी मड़ैया को कौन छायेगा? इसी प्रकार कार्त्तिक के महीने में वह 'झूमर' नामक लोक गीत गाने को तरसती है।[3]

इस प्रकार की जन-सामान्य-जीवन की भावनाओं को लेकर पद्मावतकार ने अपने बारहमासे को जो रूप दिया है, वह लोक गीतों

---

१. डा० किरणकुमारी गुप्ता, 'हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण', पृ० ८३-८५।

२. श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, 'विद्यापति की पदावली', पृ० २७१।

३. 'जायसी ग्रन्थावली'—'नागमती वियोग खण्ड'।

में प्रचलित बारहमासा वर्णन से बहुत दूर की चीज नहीं जान पड़ता। इस दृष्टि से लोक गीतों के बारहमासा गान के कुछ अंशों से जायसी के बारहमासे के कुछ स्थलों की तुलना अपेक्षित है। उन्होंने अपने सावन मास के वर्णन में लिखा है—

सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी।

... ...

सखिन रचा पिउ संग हिंडोला। हरियरि भूमि, कुसुंभी चोला।
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देइ झकझोरा॥

ठीक इसी प्रकार की स्वाभाविक उक्तियाँ एक लोक गीत के बारहमासे के श्रावण वर्णन से उद्धृत की जा रही हैं–

सखि मैं ना जाऊँ भूलण कूँ·····।
उस लसकरिया से कहियौ जाय·····।

सावण मास लगा जब आय, घर घर भूला बटावैं लोग।

घर घर हिंडोले गड़ावैं लोग·····।
·····आलि हमें दुख होय।
सखि मैं ना जाऊँ भूलण कूँ।[1]

सावन का महीना लगते ही गाँव-गाँव में हिंडोले गड़ जाते हैं। गाँव की गोरियाँ इन पर झूम-झूम कर कजली गाने लगती हैं। ऐसे

---

१. राहुल सांकृत्यायन, 'आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें', पृ० ११५।

अवसर पर संयोगियों के हर्ष का सीमा नहीं रहती। किन्तु वियोगिनियों को उनके प्रिय की स्मृति आकुल किये रहती है। उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में सामान्य ग्राम्य जीवन के इसी पक्ष की अभिव्यक्ति हुई है।

इसी तरह जायसी के पूस मास और लोक गीतों के पूस मास के वर्णन में एक ही सामान्य लोक चेतना की व्यंजना हुई है—

पूस मास थर थर तन काँपा।
कंत कहाँ लागौं ओहि हियरें।
सौंर सपेती आवै जूड़ी।

ये उक्तियाँ जायसी के बारहमासे की हैं। इनमें न तो कवि की कल्पना की बारीकियाँ हैं और न विरहकालीन प्रकृति के वर्णन का रूढ़िगत रूप। जिस ढंग से एक अपढ़ और सरल हृदय सोच सकता है उसी का छंद-बद्ध रूप हमें यहाँ मिलता है। लोक गीतों में भी पूस मास का वर्णन इसी प्रकार मिलता है—

सखि मैं न जाऊँ भूलण कूँ।
उस लसकरिया से कहियो जाय।
... ...
पूस मास लगा जब आय। कांपे पलंग तुरैया सेज।
पिया बिना कांपे गोरी का सरीर, सखि मैं ना—।[1]

इ. षट-ऋतु वर्णन—ऊपर षट-ऋतु वर्णन की परम्परा पर विचार किया जा चुका है। जायसी ने भी परम्परा-पालन की दृष्टि से

---

१. राहुल सांकृत्यायन, 'आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें', पृ० ११५।

ही सही—षट-ऋतु वर्णन किया है। उनके पद्मावत में षट-ऋतु वर्णन नाम का एक पूरा खण्ड ही आया है। रत्नसेन और पद्मावती के विवाह के पश्चात् उनका मिलन होता है, बहुत दिनों के वियोग के बाद नायक और नायिका मिलते हैं। पद्मावतकार को इसी अवसर पर मौका मिलता है और वह छः ऋतुओं का विस्तृत वर्णन कर जाता है। यह ऋतु वर्णन संभोग शृङ्गार के उद्दीपन की दृष्टि से लिखा गया है।

यद्यपि लोक गीतों में इस प्रकार षट-ऋतु वर्णन की कोई प्रथा नहीं मिलती—फिर भी विभिन्न महीनों की प्रकति का वर्णन बारहमासा और चौमासा गानों में मिल जाता है। जायसी ने अपने षट-ऋतु वर्णन में जो चित्र दिये हैं उनकी मूल चेतना की झलक लौकिक—गीति—चित्रों में मिल जाती है। जिस प्रकार उनके बारहमासा वर्णन में अधिकांश लोक-जीवन के चित्रों और लोक भावनाओं का समावेश हुआ है उसी प्रकार इस ऋतु वर्णन का आधार भी सामान्य लौकिक—भाव भूमि है। उदाहरण स्वरूप उनका वसंत वर्णन लिया जा सकता है—

प्रथम बसंत नवल रितु आई। सुरितु चैत बैसाख सोहाई।
चंदन चीर पहिरि धरि अंगा। सेंदुर दीन्ह बिहँसि भरि मगा।
... ...
सौर सुपेती फूलन डासी। धनि और कंत मिलें सुखबासी।
पिउ संजोग धरि जोवन बारी। भौंर पुहुप संग करहिं धमारी॥
होइ फाग भलि चाँचरि जोरी। बिरह जराइ दीन्ह जस होरी॥
... ...
जिन्ह घर कंता, रितु भली, आव बसंत जो नित्त।
सुख भरि आवहिं देव हरै, दुख न जानै कित्त॥

प्रस्तुत उद्धरण में परवर्ती रीति-कालीन कवियों जैसी अलंकारों की ठूँसठाँस या उक्ति चातुर्य की कलाबाज़ियों का प्रदर्शन नहीं है। जायसी

का यह बसंत वर्णन–'बनन में बागन में बगरो बसंत है', (पद्माकर) अथवा 'कन्त बिन बासर बसंत लागे अंतक से, तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे दहकन' (देव) के बसंत वर्णन की कोटि में नहीं रखा जा सकता। यहाँ जो उक्ति का सारल्य है, लोक जीवन के विविध रूपों की जो सीधी सादी अभिव्यक्ति है, उन सबके आधार पर हम पद्मावतकार के इस वसंत वर्णन को लोक गीतों के वातावरण में पाते हैं।

इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'पद्मावत' के षट-ऋतु और बारहमासा वर्णनों में उन्हीं लोक-तत्वों का समावेश हुआ है जिनकी सहायता लोक-कण्ठ ने लोक गीतों के निर्माण में ली है। कुल मिलाकर जायसी का प्रकति-वर्णन लौकिक काव्य रूपों और लोक-गीतों के बहुत निकट है।

पाँचवाँ अध्याय

लोक-पक्ष

(१) लोक कृत्य ।
(२) लोकोत्सव ।
(३) लोक प्रथाएँ ।
(४) लोक विश्वास ।

सोम सनीचर पुरुब न चालू ।
मंगल बुद्ध उतर दिसि कालू ॥

—लोक विश्वास (यात्रा विचार)

*

लोक जीवन के शेष पहलू

अब तक हमने 'पद्मावत' में प्रयुक्त लोक साहित्य के विविध उपादानों पर विचार किया है। लोक उपादानों की दृष्टि से लोक जीवन के अन्य पक्षों का भी बड़ा महत्व है। पद्मावतकार द्वारा गृहीत लोक-कथा-रूप, लोक-गीति-भावना, लोक-भाषा, लोक-शैली और लोक-उपमानों आदि पर विचार कर लेने के पश्चात् हमारे सन्मुख लोक समाज के अन्य विविध पक्ष आते हैं। इनके अन्तर्गत लोक जीवन की अनेक प्रकार की प्रथाओं, उसके रीति-रिवाजों, उत्सवों और विश्वासों आदि का समावेश किया गया है। विद्वानों ने इन्हें भी सामूहिक रूप से लोक-वार्ता (फोक-लोर) का अंग माना है। प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रारम्भ में लोक उपादानों पर विचार करते समय लोक वार्ता की परिभाषा, उसके अंगों और उप-अंगों का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। यहाँ हम पद्मावतकार द्वारा गृहीत लोक वार्ता के इन्हीं शेष तत्वों का विवेचन करेंगे। यह विवेचन दो दृष्टियों से अपेक्षित है।

(१) इनके द्वारा सांस्कृतिक परम्परा का चित्रण, और
(२) पद्मावत की कथा में इनका महत्व।

पद्मावत में वर्णित लोक जीवन के विविध पक्षों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(१) लोक कृत्य,
(२) लोकोत्सव,

(३) लोक प्रथाएँ, और
(४) लोक विश्वास।

(१) लोक कृत्य

इसके अन्तर्गत तीन बातें विस्तार के साथ वर्णित हुई हैं—(१) विवाह, (२) भोज, (३) युद्ध। इनमें से प्रथम दो का सम्बन्ध सामान्य हिन्दू जाति से है और तीसरे का सम्बन्ध मध्यकाल की लड़ाकू क्षत्रिय जाति से है।

(१) विवाह—पद्मावतकार ने इस सामाजिक कृत्य का वर्णन 'रत्नसेन-पद्मावती-विवाह-खण्ड' के अन्तर्गत किया है। हिन्दू समाज में इस कृत्य का बड़ा महत्व है। गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने के लिये प्रत्येक हिन्दू का यह धर्म समझा जाता है कि वह अपना विवाह करे और आदर्श दाम्पत्य जीवन व्यतीत करे तथा संतानोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण एवं मातृ-ऋण से उऋण हो। कुछ थोड़े से सन्यासी और विरागी प्रवृत्ति के लोगों को छोड़कर प्रत्येक हिन्दू का यह सामाजिक कर्त्तव्य है कि वह वैवाहिक जीवन व्यतीत करे। जो लोग समाज में गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी अविवाहित रहते हैं वे बहुत अच्छी दृष्टि से नहीं देखे जाते।[1] इस सामाजिक कृत्य की प्रथा हिन्दू सभ्यता के

---

1. "To a Hindu marriage is the most engrossing event of his life ;.....An unmarried man as looked upon as having no social status and as being an almost useless member of society."
—A. J. A. Dubois : Hindu Manners, Customs and Ceremonies, pp. 205.

आदि युग से प्रारम्भ हुई है और थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ आज तक ज्यों की त्यों चली आ रही है। विवाह की जो शास्त्रीय पद्धति है उसमें तो प्रायः कोई अन्तर नहीं हुआ है किन्तु जो बातें लोकाचार सम्बन्धी हैं उनमें देश काल के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहा है।

जायसी का 'विवाह-वर्णन' हिन्दू समाज का लोक दृष्ट विवाह वर्णन है। उन्होंने हिन्दू शास्त्रों से वैवाहिक कृत्यों का अनुशीलन करके अपना विवाह वर्णन नहीं लिखा है, वरन् सामान्य हिन्दू जीवन में जिस प्रकार यह कृत्य सम्पन्न होता था—और होता है—उसे देखकर ही उन्होंने अपना यह वर्णन लिखा है। सबसे पहले पद्मावती के पिता ने बरच्छा दिया और रत्नसेन को टीका काढ़ा—

भा बरोक तब तिलक सँवारा।
... ...
औ बरोक भा टीका काढ़ा॥

विवाह की लोक रीतियों में 'बरच्छा' का प्रमुख स्थान है। यह शब्द स्वयं ही अपना अर्थ व्यक्त करता है। इसमें कन्या पक्ष वाला वर पक्ष वाले से विवाह की बातचीत पक्की करके—कुछ 'पत्रं पुष्पं' ठहरौनी स्वरूप देता है। यह सर्व प्रथम वैवाहिक कृत्य है। इसे करने के बाद दोनों पक्ष विवाह करने के लिये वचनबद्ध हो जाते हैं।

बरच्छा चढ़वा लेने के पश्चात् जायसी ने अन्य वैवाहिक आचारों का वर्णन थोड़ा विस्तार से किया है। सबसे पहले लग्न रखी गई और विवाह की तिथि निश्चित की गई; फिर घर-घर विवाह का निमंत्रण दिया गया। महल की दासियों और स्त्रियों ने 'सोहाग' गाना आरम्भ कर दिया। मुक्ता मणियों से मंडप छाया गया। उसमें चन्दन के खम्भे लगाये गये। सारे नगर में, 'घर-घर' में, बन्दनवारें लटकने लगीं और मंगलगायन होने लगा। फिर शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त में रत्नसेन

घोड़े पर सवार होकर—दूल्हा बनकर-धूम-धाम से विवाह के लिये चला। उसके माथे पर मौर बंधा था और सिर पर छत्र लगा था। बाजे-गाजे बज रहे थे। बड़े-बड़े राजा बराती बने थे।

अभी बारात कन्या पक्ष के दरवाजे पर पहुँच ही रही थी कि पद्मावती अपनी सखियों सहित अपने भावी पति को देखने के लिये धौरहरे पर चढ़ गई। यहाँ यह स्मरणीय है कि पद्मावती रत्नसेन को एक बार शिव मन्दिर में बहुत निकट से देख चुकी थी, किन्तु पद्मावत-कार ने इस घटना का वर्णन करके 'द्वार पूजा' के समय का एक अत्यन्त आकर्षक चित्र उपस्थित किया है। खैर! पद्मावती ने किसी तरह उस भीड़ भाड़ में रत्नसेन की एक झलक देखी और इसी समय जायसी को एक अत्यन्त काव्यात्मक वर्णन करने का अवसर मिल गया। ऐसे अव-सर पर एक युवा और दूल्हन बनी कन्या की जो आन्तरिक दशा होती है उसका बड़ा मनोवैज्ञानिक उद्घाटन कवि ने किया है—

हुलसे नैन दरस मदमाते। हुलसे अधर रंग रस राते॥
हुलसा बदन ओप रवि आई। हुलसि हिया कंचुकि न समाई॥
हुलसे कुच कसनी बंद टूटे। हुलसी भुजा बलय कर फूटे॥

... ...

अंग अंग सब हुलसे, कोइ कतहूँ न समाइ।
ठावहिं ठाँव बिमोही, गइ मुरछा तनु आइ॥

इसके बाद बारात द्वार पर लगी। फिर चित्रसारी में उसे टिकाया गया। बरातियों को भोजन कराया गया और विवाह के अन्य आवश्यक कृत्य प्रारम्भ हुए। मंडप में चौक पूरा गया। सोने के कलशों में पानी भर कर रखा गया। अप्सरा सी सजी सजाई दूल्हन मंडप में लाई गई। वर वधू की गाँठ जोड़ी गई। पंडितों ने वेद मन्त्रों का पाठ प्रारम्भ किया। उन्होंने कन्या की राशि का नाम लिया। फिर वर वधू में मालाओं का आदान प्रदान हुआ। सात भाँवरे पड़ीं। उसके बाद दान दहेज और निछावर के कृत्य सम्पन्न हुए। विवाह हो गया—

जहँ सोने कर चित्तर सारी। लेइ बरात सब तहाँ उतारी॥
... ...
गाँठ दुलह दुलहिन कै जोरी। दुऔ जगत जो जाइ न छोरी॥
वेद पढ़े पंडित तेहि ठाऊँ। कन्या तुला राशि लेइ नाऊँ॥
... ...
चाँद के हाँथ दीन्ह जयमाला। चाँद आनि सूरज गिउघाला॥
... ...
कंत लीन्ह दीन्हा धनि हाँथा। जोरी गाँठ दुऔ एक साथा॥
चाँद सुरुज सत भाँवरि लेहीं। नखत मोति नेवछावरि देहीं॥

भइ भाँवरि, नेवछारि, राजचार सब कीन्ह।
दायज कहौं कहा लगि लिखि न जाइ जत दीन्ह॥

यहाँ आकर विवाह के सामाजिक या लौकिक कृत्यों की समाप्ति होती है। हम ऊपर यह कह आये हैं कि पद्मावतकार द्वारा किया गया यह विवाह वर्णन लोक-दृष्ट है। शास्त्रानुमोदित वह इसलिये है कि हिन्दू जीवन में जायसी के समय जो विवाह पद्धति प्रचलित थी एवं जो आज है वह शास्त्र पर ही आधारित है। जायसी कालीन शास्त्रीय विवाह पद्धति और आधुनिक शास्त्रीय विवाह पद्धति में कुछ विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता। उदाहरण के लिये हम केवल एक शास्त्र-विहित कार्य लें। यह है 'सप्तपदी' का कृत्य। जब तक वर और वधू पाणिग्रहण के पश्चात् गाँठ जोड़कर सात भावरें नहीं ले लेते तब तक विवाह पूर्णरूप से सम्पन्न नहीं माना जाता।[1]

---

1. "The majority view is that the parties become husband and wife at the end of "Saptapadi".
—Dr. A. S. Altekar,: The Position of Women in Hindu Civilization p. 97.

पाणिग्राहणिका मंत्रा नियतं दारलक्षणम्।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विवाहत्सप्तमे पदे॥ —'मनु'

हम ऊपर देख आये हैं कि जायसी भी अपने काव्य के विवाह वर्णन में इस कृत्य विशेष को भूल नहीं सके हैं–

चाँद सुरुज सत भाँवरि लेहीं।

'सप्तपदी' की इस शास्त्रीय प्रथा को लोक जीवन ने भी अपने वैवाहिक कृत्यों का एक अत्यन्त प्रमुख अंग बना लिया है। सात भाँवरें पड़ जाने के बाद ही कन्या पराई होती है–

पहिली भँवरिया के घुमतै हो बाबा
अबहीं हम बेटी तोहार।
दुसरी भँवरिया के घुमतै हो अम्मा
अबहीं हम धेरिया तोहार।
तीसरी भँवरिया के घुमतै हो भैया
अबहीं हम बहिनो तोहार।
चौथी भँवरिया के घुमतै हो भौजी
अबहीं ननदिया तोहार।
... ...
सतईं भँवरिया के घुमतै हो बाबा
भइलिउँ में तिरिया पराई।

जायसी ने विवाह से सम्बन्धित अन्य लोक कृत्यों के रूप में वरच्छा, सोहाग गायन, भोज और न्योछावर आदि का उल्लेख किया है।

कुल मिलाकर यह विवाह वर्णन–

(क) हिन्दू समाज के एक कृत्य विशेष का चित्र उपस्थित करता है।

(ख) जायसी कालीन लोक संस्कृति के एक प्रमुख पहलू पर प्रकाश डालता है।

(ग) लोक-दृष्ट और लोकानुमोदित है।

(घ) पद्मावत की कथा को प्रस्तुत लोक कृत्य वर्णन से काफी विस्तार मिली है, पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड भी मूलतः इसी कृत्य पर आधारित है।

(ङ) काव्यात्मकता की दृष्टि से प्रस्तुत वर्णन विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। बारात के द्वार पर लगने के समय दूल्हे को देखकर दुलहिन रूप में पद्मावती के हृदय की आनन्दावस्था का जो मनोवैज्ञानिक उद्घाटन हुआ है उसको छोड़कर शेष वर्णन इतिवृत्तात्मक है। "मिलन एवं समर्पण की अपूर्व लालसा से भर प्रेयसि और प्रियतम के हृदयों में विवाह के समय किन-किन अपूर्व एवं मधुर भावनाओं का उदय हो रहा था तथा उस समय रत्नसेन के साथी और पद्मावती की सखियाँ तथा माता पिता क्या सोच रहे थे, इसका वर्णन कवि ने नहीं किया।"[1] वह इन मार्मिक एवं काव्यात्मक स्थलों के वर्णनों को बड़ी सफाई से छोड़ गया है।

(२) भोज--विवाह के बाद दूसरे लोक-कृत्य के रूप में भोज का वर्णन आता है। यह 'भोज' वर्णन दो अवसर पर किया गया है--

(१) पद्मावती के विवाह के अवसर पर,

(२) रत्नसेन और अलाउद्दीन की मैत्री के अवसर पर।

इन दोनों भोजों में दूसरे भोज को कोई लौकिक या सामाजिक कृत्य नहीं कहा जा सकता। वह किसी रईस द्वारा किसी अधिकारी को

---

१. डा० कमल कुलश्रेष्ठ, 'मलिक मुहम्मद जायसी'--भाग १।

दी गई आधुनिक 'पार्टी' का नमूना है। उसे हम व्यक्तिगत जीवन का कृत्य कह सकते हैं, किसी सामाजिक परम्परागत कृत्य के अन्तर्गत उसका स्थान नहीं।

रत्नसेन और पद्मावती के विवाह के अवसर पर दिया गया 'भोज' एक लोक कृत्य है। वह बिरादरी का 'भोज' है। सामान्य लोक जीवन में ऐसे भोजों के अनेक अवसर आते हैं। पुत्र-जन्म के अवसर पर, विवाह के अवसर पर, यज्ञिक एवं अन्य-अन्य धार्मिक अनुष्ठानों तथा मृत्यु के अवसर पर हिन्दू समाज के प्रत्येक मनुष्य को ऐसे भोजों का देना एक प्रकार से अनिवार्य होता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसे अपने भाई-बन्धु, हित-नात और बिरादरी के लोगों के बीच लज्जित होना पड़ता है।

सभी प्रकार के अवसरों पर दिये गये भोजों में विवाह के अवसर पर दिया गया 'भोज' प्रमुख माना जाता है।[1] वस्तुतः 'भोज' या 'जेवनार' का जो अर्थ है वह इसी वैवाहिक भोज से है। पद्मावतकार ने अपना 'भोज वर्णन' परम्परा के अनुकूल किया है। उसने 'भोज वर्णन' का जो अवसर चुना है वह भी उपयुक्त है। इस अवसर पर पद्मावती के पिता गन्धर्वसेन ने अनेक प्रकार के व्यंजन बनवाये हैं।

औ छप्पन परकार जो आये। नहिं अस देख, न कबहूँ खाये।

इन सभी प्रकार के व्यंजनों में महत्वपूर्ण वस्तु है 'भात'—

पहिले भात परोसे आना।

---

1 "The feast given to the brotherhood at the wedding is known as 'Jewnar' or 'Bhoj' ".
—G. Grierson : Behar Peasant Life, Ed. II, 1926, p. 373.

पद्मावतकार लौकिक भोजों के इस सर्व प्रमुख पदार्थ को नहीं भूल का है। हिन्दुओं के जेवनार में जो लोग एक पंक्ति में बैठकर भात हीं खा सकते वे बिरादरी से बाहर समझे जाते हैं।

लोक जीवन में वैवाहिक कृत्यों के विभिन्न अवसरों पर वर-पक्ष और कन्या पक्ष के पण्डितों के बीच अथवा दो अन्य समझदार समझे जाने वाले दलों के बीच जो 'शास्त्रार्थ' हुआ करता है—पद्मावतकार ने उसका भी एक संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत किया है। इसका अवसर जेवनार प्रारम्भ होने के पहले आया है। लोक जीवन में भोज और भात के समय बहुधा बाजा बन्द करवा दिया जाता है।

जेवन आवा बीन न बाजा।

और इसीलिये रत्नसेन ने भोजन करना अस्वीकार कर दिया।

बिनु बाजन नहिं जेवै राजा।

कारण पूछने पर उसने कहा-

तुम पण्डित जानहु सब भेदू।
पहिले नाद भएउ तब बेदू॥
सो तुम बरजि नीक का कीन्हा
जेवन संग भोग विधि दीन्हा।

इस पर कन्या पक्ष के लोगों ने संतोषजनक उत्तर दिया—

राजा उतर सुनहु अब सोई।
महि डोलै जो बेद न होई॥
नाद बेद भद पैंड जो धारी।
काया महं ते लेहु विचारी॥

इस हठयोगी व्याख्या के कारण बात समझ में आ गई। विवाद आगे नहीं बढ़ा और भोज प्रारम्भ हो गया।

इन कुछ एक बातों के अतिरिक्त पद्मावतकार ने 'भोज' सम्बन्धी किसी अन्य लौकिक विशेषता का वर्णन नहीं किया है। 'पद्मावत' की कथा और काव्यात्मकता की दृष्टि से इस भोज वर्णन का कोई महत्व नहीं। इसका महत्व बस इतना ही है कि यह लगभग चार सौ वर्ष पूर्व के एक लोक कृत्य पर थोड़ा बहुत प्रकाश डालता है तथा आधुनिक लोक जीवन के भोजों की परम्परा का ज्ञान कराता है।

(३) युद्ध--इस कृत्य का सम्बन्ध सम्पूर्ण हिन्दू समाज से नहीं है। हिन्दू समाज के चार वर्णों--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र--में से केवल क्षत्रिय वर्ण के लोगों से ही युद्ध का सम्बन्ध रहा है। मध्यकालीन संस्कृति में ब्राह्मणों की भांति क्षत्रिय जाति का स्थान बहुत ऊँचा था। इनके मुख्य कर्त्तव्य प्रजा पालन, दान-यज्ञ, अध्ययन आदि थे। राज्य के शासक, सेनापति और योद्धा प्रायः ये ही होते थे।[1]

'पद्मावत' की कथा एक राजपूत रानी की कथा है। इसलिये इसके अधिकांश प्रमुख पात्र क्षत्रिय ही हैं। कथा की प्रबन्ध धारा के बीच युद्ध के कई अवसर आये हैं और इन अवसरों पर पद्मावतकार ने मध्ययुग की इस लड़ाकू क्षत्रिय जाति की जातीय विशेषता का अच्छा वर्णन किया है। प्रत्येक क्षत्रिय पात्र युद्धोत्साह और वीरता के दर्प से मंडित दिखलाई पड़ता है।

अलाउद्दीन के दूत का अपमान भरा पत्र पाकर रत्नसेन सिंह की भांति गरज उठता है। दूत को सम्बोधित करके अलाउद्दीन के प्रति कहे गये उसके वचन एक क्षत्रिय राजा के योग्य है–

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', पृ० ४४-४५।

सुनि अस लिखा, उठा जरि राजा।
जानौ दैउ तड़पि घन गाजा॥
का मोहिं सिंघ देखावसि आई।
कहौं तो सारदूल धरि खाई॥
भलेहि साह पुहुमी पति भारी।
माँग न कोउ पुरुष कै नारी॥
... ...

हौं रनथंभउर नाह हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू॥
... ...

जौ अस लिखा भएउं नहिं ओछा। जियत सिंघ कै गह को मोछा॥
... ...

तुरुक जाइ कहु मरै न धाई। होइहि इस-कंदर कै नाई॥
महूँ समुझि अस अगमन, सजि राखा गढ़ साजु।
काल्हि होइ जेहि आवन, सो चलि आवै आजु॥

इसी प्रकार गोरा बादल के रूप में मध्य युग का क्षात्र-धर्म साकार हो उठा है। अलाउद्दीन के छल-कौशल से रत्नसेन के बन्दी बना लिये जाने के पश्चात् पद्मावती इन दो वीरों के यहाँ जाती है। चित्तौड़ में होने वाली सभी घटनाओं से परिचित वीर गोरा और बादल उसका आगमन सुनकर अपने घरों से बाहर निकल आते हैं—

निसरि आए छत्री सुनि दोऊ। तस कांपे जस काँप न कोऊ।
... ...

उलटि बहा गंगा कर पानी। सेवक बार आइ जो रानी॥
का अस कष्ट कीन्ह तुम्ह, जो तुम्ह करत न छाज।
आज्ञा होइ बेगि सो, जीउ तुम्हार काज॥

और फिर पद्मावती से वृत्तान्त सुनकर गोरा और बादल रत्नसेन की मुक्ति का बीड़ा लेते हैं। बादल अपनी नवागता वधू के सुहाग की भी चिन्ता नहीं करता। दोनों वीर सात सौ सवारियाँ साजकर चित्तौड़ से दिल्ली जाते हैं। बादल तो रत्नसेन को छुड़ाकर उसके साथ चित्तौड़ वापस लौट आता है किन्तु गोरा सुल्तान की सेना से लड़ते समय मारा जाता है—

गोरा परा खेत महँ, सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा लेइ चितउर नियरान॥

इन प्रसंगों से सम्बद्ध एवं अन्य अवसरों पर होने वाले युद्धों का वर्णन पद्मावतकार ने बड़ी सजीवता से किया है। हाथी, घोड़े, अस्त्र-शस्त्र, सिपाही और तोप आदि के जीवन्त वर्णनों द्वारा मध्ययुगीन युद्ध प्रणाली पर काफी प्रकाश पड़ता है।

इस प्रकार 'पद्मावत' के 'युद्ध वर्णन' मध्य युग के वीर क्षत्रिय राजाओं और सेनापतियों की जातिगत विशेषता पर प्रकाश डालते हैं, इसके अलावा इस जातीय विशेषता द्वारा राजपूत कालीन क्षात्र-संस्कृति और युद्ध प्रणाली का दर्शन होता है।

पद्मावत की कथा में इन युद्ध वर्णनों द्वारा वीर रस की निष्पत्ति हुई है। इनके बिना इस महाकाव्य में एक रस का अभाव रह जाता।

(२) लोकोत्सव

जन जीवन में विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक एवं धार्मिक उत्सवों का बड़ा महत्व है। मनोरंजन एवं सांस्कृतिक परम्परा के निर्वाह की दृष्टि से ये पर्वोत्सव एवं ऋतु-उत्सव लोक समाज के अनिवार्य अंग बन

गये हैं। ये उत्सव वर्ष में कई बार विभिन्न अवसरों पर मनाये जाते हैं। इनके पीछे प्राचीन लोक विश्वासों की एक परम्परागत एवं विस्तृत भूमिका होती है। इन्हीं लोक-परम्परा भूमि के आधार पर प्रत्येक समाज में इन उत्सवों का स्थान अक्षुण्ण रहता है और हर बार ये एक नूतन उल्लास एवं उत्साह के साथ मनाये जाते हैं। जब भी इन उत्सवों की तिथियाँ आती हैं लोक जीवन गाता बजाता हुआ इनका स्वागत करता है। इस अवसर पर उसके दैनिक जीवन की सारी करुणा, सारा क्लेश एवं सारा दुःख कुछ काल के लिये अदृश्य हो जाता है। दरिद्र से दरिद्र व्यक्ति भी उल्लास में झूमता हुआ इन उत्सवों में बुल मिल जाता है, परम्पराओं की पूजा करता है और भावी मंगलाशा का अनुभव करता है।

जायसी ने अपने पद्मावत में यथास्थान जिन लोकोत्सवों का उल्लेख अथवा वर्णन किया है वे हिन्दू समाज के हैं। पद्मावतकार ने उनकी परम्परा अथवा सांस्कृतिक महत्ता आदि पर प्रकाश तो नहीं डाला है, किन्तु उन अवसरों पर सम्पन्न होने वाले कुछ लोक कृत्यों का उल्लेख अवश्य किया है। पद्मावत में वर्णित ये उत्सव तीन हैं—

(१) बसंत,
(२) होली, और
(३) दीवाली।

(१) बसंत—इस उत्सव का परिचय दो रूपों में कराया है।

(१) पर्वोत्सव के रूप में,
(२) ऋतु-उत्सव के रूप में।

पर्वोत्सव के रूप में बसंत पंचमी नामक त्योहार का वर्णन किया गया है। वर्तमान समय में यह उत्सव माघ, शुक्ल पंचमी को मनाया जाता है। ब्राह्मण-समाज में इस पर्व का विशेष महत्व है। इस दिन

वीणापाणि सरस्वती की पूजा की जाती है। इसे श्री पंचमी भी कहते हैं। पद्मावतकार ने इस उत्सव का वर्णन निम्न प्रकार से किया है। पहले हीरामन सुआ रत्नसेन को पद्मावती के मिलने की युक्ति बताते समय 'श्री पंचमी' की चर्चा करता है–

माघ मास पाछिल पछ लागे। सिरी पंचिमी होइहि आगे।
उघरिहि महादेव कर बारू। पूजिहि जाइ सकल संसारू।
पदमावति पुनि पूजै आवा। होईहि एहि मिस दीठि मेरावा॥

यहाँ हम पद्मावत की श्री पंचमी को आधुनिक बसंत या श्री पंचमी की तिथि के अनुकूल पाते हैं और यह भी जान लेते हैं कि इस दिन देवाधिदेव महादेव की पूजा होती थी, जो उत्तर भारत के अनेक धर्म-स्थानों में आज भी धूम-धाम से की जाती है।

श्री पंचमी का दूसरा उल्लेख 'बसंत खण्ड' के अन्तर्गत आता है जब पद्मावती अपनी सहेलियों सहित महादेव पूजा के लिये देव मन्दिर जाती है–

सिरी-पंचमी पहुँची आई।

... ...

भएउ हुलास नवल ऋतु मांहा। खिन न सोहाइ धूप औ छाँहा।

... ...

आजु बसंत नवल ऋतु राजा। पंचमि होइ जगत सब साजा।
नवल सिंगार बनस्पति कीन्हा। सीस परासहि सेंदुर दीन्हा॥

... ...

कँवल सहाय चलीं फुलवारी। फर फूलन सब करहिं धमारी॥
आपु आपु महँ करहि जो हारू। यह बसंत सब कर तिवहारू॥

... ...

नवल बसंत, नवल सब बारी। सेंदुर बुक्कन होइ धमारी॥
खिनहि चलहि खिन चाँचर होई। नाच कूद भूला सब कोई॥

ऊपर के वर्णन में जायसी माघ मास की बसंत पंचमी के साथ ही साथ बसन्त ऋतु (चैत-वैसाख) का भी उल्लेख कर गए है। वस्तुतः बसन्त पंचमी और बसन्त ऋतु दो भिन्न वस्तुएँ हैं। पद्मावतकार ने इनको एक में मिलाकर कुछ भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इसी प्रकार बसन्त पंचमी के अवसर पर जिस 'धमारी-गान' और 'चाँचरी' नृत्य की चर्चा की गई है वह भी बहुत उपयुक्त नहीं कही जा सकती। 'धमारी' होली के अवसर पर गाया जाने वाला लोक गीत और 'चाँचरी' होली के अवसर पर नाचा जाने वाला लोक नृत्य है। इनका महत्व माघ के महीने में उतना नहीं है जितना फागुन में। फिर भी प्रस्तुत बसन्त वर्णन तत्कालीन लोक जीवन के एक सांस्कृतिक पहलू का परिचय कराता है। इस दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है।

ऋतु उत्सव के रूप में पद्मावतकार ने बसन्त वर्णन चैत वैसाख में ही किया है–

प्रथम वसंत नवल ऋतु आई। सु ऋतु चैत वैसाख सुहाई।

इस अवसर पर भी होली में गाये जाने वाले 'धमारी' लोक गीत और नाचे जाने वाले चाँचरी नृत्य की चर्चा की गई है। इन दो महीनों की प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया गया है।[1]

(२) होली—फाल्गुनी पूर्णिमा की रात्रि में एक वर्ष के पुराने संवत् में आग लगाती है--वह जलकर समाप्त होता है और दूसरे दिन

---

१. प्राचीन भारत में बसन्तोत्सव का क्या रूप था, वह किस प्रकार मनाया जाता था, इसका विशद वर्णन आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' में किया है। देखिये–(६५वें अध्याय से ७१वें तक)

चैत की परिवा को होली का त्योहार लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारतवर्ष में धूम-धाम से मनाया जाता है। दक्षिण भारत के लोक पर्वोत्सव में इस पर्व का उतना महत्व नहीं जितना उत्तरी भारत में। इस पर्व के पीछे कई प्रकार की किंवदंतियाँ प्रचलित हैं जिनमें एक प्रमुख कथा यह है कि होली के दिन ही हिरण्यकश्यप की बहिन 'होलिका' ने सत्यव्रती प्रहलाद को अपनी गोद में लेकर जला डालने का प्रयत्न किया था। होलिका तो स्वयं जल गई, किन्तु प्रहलाद जीवित बच गया था। तभी से प्रत्येक वर्ष भक्त प्रहलाद की स्मृति में राक्षसी होलिका जलाई जाती है और सत्य एवं धर्म के प्रतीक प्रहलाद के जीवित बच जाने की खुशी में यह त्योहार मनाया जाता है।

पद्मावतकार ने अपने होली वर्णन में इस प्रकार की किसी पौराणिक कथा अथवा लोक-किंबदंती का उल्लेख नहीं किया है। उसने इस अवसर पर किये जाने वाले कुछ सामान्य लोक-कृत्यों मात्र का संकेत किया है और होली के जलाये जाने की बात कही है। लोक-कृत्यों के रूप में उसने प्रायः उन्हीं कृत्यों की चर्चा की है जिनका वर्णन बसंत पंचमी के अन्तर्गत आ चुका है। ऐसा करके उसने कोई भूल नहीं की है। अवध के गाँवों और कुछ पूर्वी जिलों में होली का हुड़दंग प्रायः बसन्त पंचमी के दिन से ही प्रारम्भ हो जाता है।

होली जलाने की चर्चा बसन्तोत्सव के अवसर पर आई है।

फागु खेलि पुनि दाहब होरी, सैंतब खेइ, उड़ाउब झोरी।

होली के अवसर पर नाचे जाने वाले 'चाँचरी' नामक लोक नृत्य का उल्लेख नागमती वियोग खण्ड के अन्तर्गत हुआ है–

फागु करहिं सब चाँचरि जोरी।
मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी॥

इस अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले लोक गीत 'मनोरा-झूमर' का नाम बसन्त खण्ड के बसन्त वर्णन के साथ लिया गया है–

चहै मनोरा झूमक होई।
फर और फूल लिएउ सब कोई॥

होली के दिन जो अबीर और गुलाल उड़ाया जाता है उसका उल्लेख उपादान रूप में 'गोरा बादल युद्ध खण्ड' में हुआ है! इस अवसर पर अबीर या गुलाल के स्थान पर पद्मावतकार ने 'सिन्दूर' का नाम लिया है–

खेलि फाग सेंदुर छिरकावा।

(३) दीवाली––दीवाली इस देश का एक अत्यन्त प्राचीन सांस्कृतिक पर्व है। कहा जाता है राम इसी दिन रावण को मारकर अयोध्या लौटे थे। तभी से उस दिन की पुण्य स्मृति में यह पर्व मनाया जाता है। अलबेरुनी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'इण्डिया' में इस दिन किये जाने वाले लोक कृत्यों का वर्णन किया है। उसने अपने समय का जो दीवाली वर्णन किया है वह आज के दीवाली सम्बन्धित कृत्यों से भिन्न नहीं है।[1]

पद्मावतकार ने बसंत और होली की भांति इस पर्व का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। उसने केवल नागमती वियोग खंड के बारहमासे के अन्तर्गत कार्तिक मास की प्रकृति का वर्णन करते समय दीवाली का नाम भर ले लिया है–

---

1. .....People bathe, dress festively.....they ride to the temples to give alms and play merrily with each other till noon. In the night they light.....lamp in every place."

—Alberuni : India (Part II) pp. 155.

अबहूँ निठुर आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा।
... ...

सखि मानैं तिउहार सब, गाइ, देवारी खेलि।
हौंका गावौं कंत बिनु रही छार सिर मेलि॥

(३) लोक प्रथाएँ

पद्मावत में मुख्यः चार लोक प्रथाओं का वर्णन हुआ है—

(१) गौना प्रथा

(२) सती प्रथा

(३) जौहर प्रथा और

(४) चौपड़-खेल।

(१) गौना प्रथा—विवाह हो जाने के कुछ दिनों पश्चात् जब बहू पितृ गृह से पति गृह को लाई जाती है तब गौने की प्रथा सम्पन्न होती है। कुछ हिन्दू परिवारों में गौना तुरन्त विवाह के पश्चात् होता है और कुछ में विवाह के १, ३ या ५ वर्ष बाद तक यह प्रथा की जाती है। बहुधा बहू की आयु के अनुसार गौने की तिथि शीघ्र या देर में निश्चित होती है। कुछ स्थानों पर जब बहू विवाह के बाद दूसरी बार पति के गृह में लाई जाती है तब गौना होता है। कुछ स्थानों पर जब विवाह के थोड़े या अधिक दिनों बाद पहली बार दूल्हन को बिदा करा के लाते हैं तब गौना कहा जाता है।[1]

---

1. "The second visit, which consists in the ceremony of going to the bride and bringing her home to her husband's house for the consumation of the marriage is called Gawna, Gawan, or Gauna"
—G. Grierson : Behar Peasant Life, pp. 360.

पद्मावत में दो स्थलों पर गौना वर्णन मिलता है—एक तो रत्नसेन विदाई खण्ड में पद्मावती के गौने का वर्णन है—

पुनि पद्मावति सखी बोलाई। सुनि कै गवन मिलै सब आई॥
मिलहु सखी हम तहवाँ जाहीं। जहाँ जाइ पुनि आउब नाहीं॥
... ...
हम तुम मिलि एकै संग खेला। अंत बिछोह आनि गिउ मेला॥
... ...
कंत चलाई का करौ, आयसु जाइ न मेटि।
पुनि हम मिलहिं कि ना मिलहिं, लेहु सहेली भेंटि॥

प्रस्तुत उद्धरण में बहू द्वारा अपनी सखियों-सहेलियों के भेंटे जाने का वर्णन है। गौने के समय यह मेल मिलाप का दृश्य करुणा से भरपूर होता है। गौना एक शुभ कार्य है। वह अच्छी साइत एवं शुभ घड़ी में किया जाता है—

पत्रा काढ़ि गवन दिन देखहिं, कौन दिवस दहुँ चाल।
दिसासूल, चक जोगिनि, सौंह न चलिये, काल॥

इस अवसर पर कन्या पक्ष द्वारा बधू और वर को बहुत कुछ संपत्ति एवं दैनिक व्यवहार की चीजें दी जाती हैं। पद्मावतकार ने इसका भी वर्णन किया है। गन्धर्वसेन ने रत्नसेन को अपनी बेटी के गौने के अवसर पर बहुत कुछ दिया—

रतन पदारथ मानिक मोती। काढ़ि भंडार दीन्ह रथ जोती॥
परखि सो रतन पारखिन्ह कहा। एक एक दीप एक एक लहा॥
सहसन पांति तुरय कै चली। औसौ पांति हस्ति सिंघली॥

गौने का दूसरा उल्लेख 'गोरा-बादल', 'युद्ध यात्रा खण्ड' के अन्तर्गत मिलता है। इधर तो बादल युद्ध में जाने को तैयार है उधर इसी दिन उसका गौना आया है–

बादल गवन जूझ कर साजा। तैसेहि गवन आइ घर बाजा॥

इस अवसर पर पद्मावतकार ने गौने की आई हुई बहुरिया के शृङ्गार का बड़ा काव्यात्मक वर्णन किया है–

का बरनौ गवने कै चारू। चन्द्र बदनि रचि कीन्ह सिंगारू॥
माँग मोति भरि सेंदुर पूरा। बैठ मयूर बाँक तस जूरा॥
भौंहे धनुक टकोरि परीखे। काजर नैन मार सर तीखे॥
घालि कचपची टीका साजा। तिलक जो देख ठाँव जिउ लाज॥

(२) सती प्रथा—इस प्रथा के अनुसार स्त्रियाँ अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उसके शव को लेकर चिता में जीवित ही जल जाया करती थीं। इस प्रथा का सम्बन्ध मुख्य रूप में मध्य कालीन राजपूत जाति की स्त्रियों से था। कुछ अन्य उच्च वर्णीय स्त्रियाँ भी अपने पति की चिता में भस्म हो जाया करती थीं। पर उनके लिये यह अनिवार्य नहीं था। आधुनिक युग में इस प्रथा का प्रचलन अंगरेजों के शासन काल में लार्ड विलियम बैंटिंक तक थोड़े बहुत रूप में रहा। इसके बाद राजा राममोहनराय के प्रयास से सती प्रथा के विरुद्ध कठोर कानून बना दिए गए और यह प्रथा समाप्त हो गई।

हमारे देश में इस प्रथा के बड़े पुराने उल्लेख मिलते हैं। हर्ष की माता के स्वयं अग्नि में जल मरने का वृत्तांत 'हर्षचरित' में मिलता है। राज्यश्री भी अग्नि में कूदने को तैयार हो गई थी, परन्तु उसे हर्ष ने रोक लिया। हर्ष रचित प्रिय दर्शिका में विंध्यकेतु की स्त्री के सती होने का वर्णन मिलता है। इससे पूर्व छठीं सदी के पूर्व एक शिलालेख से भानु-

गुप्त के सेनापति गोपराज की स्त्री के सती होने का उदाहरण मिलता है।[1] अलबेरूनी ने अपने 'इंडिया' में इस प्रथा का विस्तृत उल्लेख किया है। "पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्रियाँ दूसरा विवाह नहीं कर सकती थीं। उनके लिये दो ही मार्ग था या तो वे आजीवन वैधव्य व्यतीत करें या तो जल मरें.....। राजाओं की स्त्रियों को तो उनकी इच्छा के अनुकूल या प्रतिकूल सती होना ही पड़ता था।"[2]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस प्रथा का प्रचलन मुख्यतः मध्यकालीन युग की राजपूत जाति के बीच था। प्रत्येक क्षत्रिय रानी अपने पति के शव के साथ सती होने में गर्व का अनुभव करती थी। मंत्रियों या अन्य सम्बन्धियों द्वारा रोके जाने पर भी वह यह नहीं चाहती थी कि उसका पति जो इस लोक में उसके साथ रहा उस लोक में अकेले रहे। इसलिये वह अपने पति के साथ उसकी चिता में जल जाना अपना धर्म और कर्तव्य समझती थी।[3] इस अवसर पर वह एक सुहागिन का सारा शृङ्गार करती थी और धूमधाम से पति की अरथी पर बैठकर स्मशान जाती थी।

---

१. ओझा, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० ६८।

2. "If a wife loses her husband by death, she cannot marry another man. She has only to chose between two things, either to remain a widow as long as she lives or to burn herself.....As regards the wives of the kings they are in the habit of burning them, whether they wish it or not."

—Alberuni's : India, Part II, pp. 155.

3. The average Rajput princes welcomed the opportunity to become Sati and would not allow her husband to be cremated alone. Bards, ministers and

पद्मावतकार ने जिस सती प्रथा का वर्णन किया है वह राजपूत स्त्रियों से ही सम्बन्धित है। यहाँ हम रत्नसेन की मृत्यु के पश्चात् उसकी दोनों रानियों—पद्मावती और नागमती—में सती होने का स्वाभाविक उत्साह पाते हैं। वे दोनों शृङ्गार करके, बाजे गाजे के साथ सती होने को जाती हैं—

नागमती पद्मावति रानी। दुवौ महा सत सती बखानी॥
दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठी। औ सिव लोक परा तिन्ह दीठी॥

... ...

चन्दन अगर काठ सर साजा। औ गति देइ चले लेइ राजा॥
बाजन बाजहिं होइ अगूता। दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता॥

... ...

जियत कंत! तुम हम्ह गर लाई। मुए कंठ नहिं छोड़हि साई॥

अन्त में—

लागीं कण्ठ आगि देइ होरी। छार भई जरि, अंग न मोरी॥

और फिर—

राती पिउ के नेह गई, सरग भएउ रतनार।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोइ संसार॥

---

relatives would often expostulate, but without any success. So, generally at the death of almost every Rajput king or nobleman.....widows.....used to ascend the funeral pyre."

—A. S. Altekar, : The Position of Women in Hindu Civilization, 1935, pp. 154.

लड़ाई के दिनों में किले के भीतर ही एक विशाल चिता हर क्षण तैयार रखी जाती थी। कभी-कभी इन चिताओं में बारूद आदि विस्फोटक पदार्थों को भी भरा जाता था। जब राजपूत सिपाहियों की सामूहिक हार का समाचार किले में पहुँचता था तब सभी राजपूत स्त्रियाँ इन चिताओं में आग देकर सामूहिक रूप से इनमें कूद पड़ती थीं और जल मरती थीं। इस कृत्य का मूल कारण था सती प्रथा। राजपूत लड़ाई से हार कर वापस नहीं लौटते थे। वे युद्धस्थल में मारते और मर जाते थे। इसलिये हार का समाचार पाने पर उनकी स्त्रियों को अपने-अपने पति की मृत्यु का विश्वास हो जाता था और वे एक साथ मिलकर जल जाती थीं। शिरेफ महोदय ने इस कृत्य को वह 'सामूहिक आत्म हत्या'[1] कहा है, जिसके द्वारा क्षत्रिय सिपाही रणस्थल में और उनकी स्त्रियाँ आग की ज्वाला में अपना प्राणान्त कर लेती थीं।

जायसी ने दो स्थलों पर जौहर का उल्लेख किया है। पहले तो उस समय जब अलाउद्दीन और रत्नसेन की लड़ाई के समय राजपूतों को अपनी भावी हार का विश्वास हो गया तब वे जौहर करने को तैयार हो गयीं।

पद्मावतकार द्वारा किया गया यह सती प्रथा का वर्णन अत्यन्त काव्यात्मक है। इसके द्वारा राजपूत स्त्रियों के उत्साह, पति-प्रेम और शौर्य पर प्रकाश पड़ता है।

(३) जौहर—युद्ध की भांति यह कृत्य भी क्षत्रिय जीवन से सम्बन्धित था। भारतीय इतिहास के मध्य युग में राजपूत स्त्रियाँ

---

1. "Jauhar, the mass suicide which Rajputs committed, rather than yield to a conqueror, the men fighting until they were slain and the women throwing themselves into the flames."

—Shirreff's, 'Padmavati'. pp. 293.((foot note)

चन्दन अगर मलय गिरि काढ़ा। घर घर कीन्ह सरा रचि ठाढ़ा॥
जौहर कहं साजा रनिवासू। जिन्ह सत हिये कहाँ तिन्ह आँसू॥

पुरुषन्ह खड्ग सँभारे, चन्दन खेवरे देह।
मेहरिन्ह सेन्दुर मेला, चहहिं भई जरि खेह॥

किन्तु इस स्थल पर 'जौहर' हुआ नहीं। पद्मावतकार ने रत्नसेन और अलाउद्दीन से संधि कराके 'जौहर' के लिये दूसरे अवसर की योजना की है। रत्नसेन और देवपाल के युद्ध में रत्नसेन मारा जाता है, उधर अलाउद्दीन पुनः चित्तौड़ पर आक्रमण करता है। बादल की राजपूती सेना से उसका युद्ध होता है। बादल हार जाता है और फिर–

जौहर भईं सब इस्तरी, पुरुष भए संग्राम।
बादशाह गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम॥

राजपूत जीवन से सम्बन्धित लोक कृत्य विशेष के रूप में 'जौहर' प्रथा का बड़ा महत्व है। इस प्रथा में मध्ययुगीन वीरता और दर्प का पूरा-पूरा समावेश हुआ है। राजपूत स्त्रियों के जीवन की शौर्य गाथा भी इसी प्रथा में निहित है।

(४) चौपड़ का खेल–मध्यकालीन लोक जीवन में मनोरंजन के लिये अनेक प्रकार के आनन्दप्रद साधनों की व्यवस्था थी। इनमें चौपड़-खेल प्रमुख था। इन खेलों के द्वारा जुए का प्रचार भी था। कुछ शिलालेखों से ज्ञात होता है कि समाज में द्यूत-गृहों की व्यवस्था थी और उन पर राजकीय कर लगता था।[1]

---

1. गौ० ही० ओझा, 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', पृ० ५२।

'पद्मावत' में लोक जीवन के इस पहलू का अंकन हुआ है। दो स्थानों पर चौपड़-खेल का उल्लेख मिलता है। एक तो सिंहलदीप वर्णन खण्ड में राजकुमारों की चौपाल में पासा खेलने की चर्चा आई है–

मंदिर मंदिर सब कै चौपारी।
बैठि कुँवर सब खेलहिं सारी॥
पासा ढरहिं खेल भल होई।

इस खेल का दूसरा उल्लेख 'पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड' में आया है। पद्मावती रत्नसेन से पासा खेलने का प्रस्ताव करती है–

ऐसे राज कुंवर नहिं मानों।
खेलु सारि पांसा तब जानों॥

इन दोनों स्थलों में दूसरा स्थल ही लोक प्रथा के अन्तर्गत आता है। प्रथा उसे ही कहा जा सकता है, जिसे सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो। लोक जीवन सामान्य रूप से चौपड़ या किसी भी प्रकार के जुए को अच्छा नहीं समझता, किन्तु विवाह एवं सुहाग के अवसर पर वर-बधू के बीच चौपड़ खेलने की प्रथा सामाजिक है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' में विवाह के पश्चात् वर-वधू के बीच होने वाली इस द्यूत क्रीड़ा का उल्लेख इस प्रकार किया है--विवाह के बाद वर-वधू आपस में नाना भाव के रसमय पण रखकर द्यूत में एक दूसरे को ललकारते थे और यद्यपि इन प्रेम द्यूतों में हारना भी जीत थी और जीतना भी, तथापि प्रत्येक पक्ष में जीतने का ही उत्साह प्रधान था—

भोगः स यद्यपि जये च पराजये च,
यूनो मनस्तदपि वांछति जेतुमेव!

(४) लोक विश्वास

सामान्य जन जीवन में शकुन-अपशकुन, टोना-टोटका, तंत्र-मंत्र, मंगल-अमंगल और भूत-प्रेम संबंधी अन्ध विश्वासों को बड़ा महत्व दिया जाता है। शिष्ट और शिक्षित कहा जाने वाला सभ्य मानव समुदाय जिन बातों को ढोंग और वहम समझता है, वे ही बातें लोक समाज के दैनिक कार्यों में मनोवैज्ञानिक सत्य का काम करती हैं। किसी भी आवश्यक कार्य के लिये घर से बाहर जाता हुआ किसान एक बालक की छींक सुनकर सहम जाता है और उस कार्य की असफलता की भावी सूचना पाकर उस समय कहीं नहीं जाता। जब वह किसी परदेस यात्रा की तैयारी करने लगता है तो 'सोम सनीचर पुरुब न चालू, मंगल बुद्ध उतर दिस कालू' –जैसी यात्रा विचार सम्बन्धी उक्तियाँ ही उसके मुख से निकल जाती है और वह इन्हीं के अनुकूल अपनी यात्रा आरंभ करता है। भावी मंगल और अमंगल की चिन्ता कृषक जीवन को हर समय व्याप्त रहती है। यदि गाँव में दिन दहाड़े सियार बोले और रात में चिड़िया तो किसान के सम्मुख किसी महान भावी आशंका का भय साकार हो उठता है–

रात बोलै चिरई, दिन बोलै सियार।
उस नगरी का करौ विचार॥

इसी प्रकार प्रत्येक ग्रामीण हर विशाल और निर्जनस्थित वृक्ष को भूत- प्रेतों का अड्डा मानता है। वह उन अलौकिक सत्ताओं को भांति भांति की पूजायें देता है। बच्चे बीमार पड़ते हैं तो उनकी झाड़ फूँक की जाती है, टोना उतारा जाता है और दवा के बदले ताबीज़ (जंतर) अधिक कारगर समझी जाती है।

पद्मावतकार ने इन लोक विश्वासों को अपने ग्रन्थ में यथा अवसर

पर्याप्त स्थान दिया है। इन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(१) शकुन-अपशकुन सम्बन्धी विश्वास,
(२) यात्रा-विचार सम्बन्धी विश्वास और
(३) देवता-राक्षस सम्बन्धी विश्वास।

(१) शकुन-अपशकुन—शकुन (हिन्दी सगुन) शब्द का अर्थ होता है। वस्तुतः प्राचीन काल में शुभाशुभ का ज्ञान प्राप्त करने के लिये पक्षियों की गति विधि पर ही विशेष ध्यान दिया जाता था। वाराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' में शकुन सूचक पक्षियों की सूची इस प्रकार दी हुई है—श्यामा, श्येन, शशघ्न, वंजुल, मयूर, श्रीकर्ण, चक्रवाक, चाष, माण्डरीक, खंजन, शुक, काक, तीन प्रकार के कबूतर, कुलाल, कुक्कुट भारद्वाज, हारीत, (हारिल ?) खर, गृद्ध, पर्णकूट और चटक (पृ० सं० ८८।१)। जायसी ने अपने 'पद्मावत' में जिन शकुनापशकुन के विश्वासों का उल्लेख किया है उनमें पक्षियों के अतिरिक्त तत्कालीन लोक जीवन से सम्बद्ध अन्य अनेक विश्वास भी संग्रहीत हैं। इनका उल्लेख दो स्थलों पर हुआ है–

(क) नखशिख खण्ड में–

पन्नग पंकज मुख गहे, खंजन तहाँ बईठ।
छत्र, सिंघासन, राज, धन, ताकहँ होइ जो दीठ॥

प्रस्तुत दोहे की पंक्ति पद्मावती के मुख के लिये कही गई है और यहाँ सौंदर्य की तीव्र अभिव्यक्ति कराने के लिये शृङ्गार के परिचित उपमानों का सहारा लिया गया है। किन्तु साँप के सिर पर बैठे हुए या कमल पर बैठे हुए खंजन पक्षी को देखना एक अच्छा सगुन भी

माना जाता है। ज्योतिष में लिखा हुआ है कि ऐसा देखने वाले को राजयोग होता है।[1]

(ख) जोगी खण्ड में—

इस खण्ड में रत्नसेन के सिंहल प्रस्थान के समय शुभ सम्बन्धी शकुनों की एक लम्बी सूची दी गई है–

आगे सगुन सगुनिये ताका। दहिने माछ रूप के टाँका॥
भरे कलस तरुनी जल आई। 'दहिउलेहु' ग्वालिन गोहराई॥
मालिन आव मौर लिए गांथे। खंजन बैठ नाग के माथे॥
दहिने मिरिग आइ बन धाएँ। प्रतीहार बोला स्वर बाएँ॥
बिरिख सँवरिया दहिने बोला। बाएँ दिसा चाषु चरि डोला।
बाएँ अकासी धौरी आई। लोवा दरस आइ दिखराई॥
बाएँ कुररी, दहिने कूचा। पहुँचे भुगुति जेस मन रूचा।

जा कहँ सगुन होहिं अस, औ गवने जेहि आस।
अस्ट महा सिधि तेहि कहँ, जस कवि कहा बियास॥

प्रस्तुत उद्धरण में किसी विशेष कार्य के लिये प्रस्थान करते समय– मछली बेचने वाले मछुये का मछली सहित एवं दही बेचने वाली ग्वालिन का दही सहित मिलना, मालिन का मौर लेकर आना, खंजन पक्षी और जल से भरे हुए कलश का दिखलाई पड़ना आदि शुभ सूचक माना गया है। ये चिन्ह सामान्य जन जीवन में मंगल प्रतीकों के रूप में आज भी प्रचलित हैं।

---

१. पं० रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, पाद टिप्पणी, पृ० ५७।

(२) यात्रा विचार—यात्रा विचार सम्बन्धी लोक विश्वासों का विस्तृत वर्णन 'रत्नसेन-विदाई-खण्ड' के अन्तर्गत मिलता है। पद्मावत-कार ने बतलाया है कि किसी निश्चित दिशा में—किस दिन, किस तिथि और किस ग्रह में जाना हानिकर अथवा हितकर है। और, यदि बुरी साइतों में जाना ही पड़े तो उस अमंगल को दूर करने का क्या उपाय है। यहाँ हम प्रत्येक विश्वास से सम्बन्धित कुछ उदाहरण लेते हैं।

(क) दिवस विचार : दिशाशूल—

अदित सुक्र, पच्छिउ दिसि राहू।
बीफै दखिन लंक दिसि दाहू॥
सोम सनीचर पुरुब न चालू।
मंगल बुद्ध उतर दिसि कालू॥

रविवार और शुक्रवार को पच्छिम दिशा राहु के समान ग्रसित करने वाली, वृहस्पतिवार को दक्खिन दिशा लंका-दाह की भांति जला देने वाली होती है। सोमवार और शनिवार को पूरब की यात्रा नहीं करनी चाहिये। मंगल और बुद्ध को उत्तर दिशा काल के समान होती है।

(ख) तिथि विचार—

परिवा नौमी पुरुब न भाए।
दूइज दसमी उतर अदाए॥

. . . .

पाँचइं तेरसि दखिन रमेसरी। छठि चौदसि पच्छिउं परमेसरी।

परिवा और नौमी को पूर्व दिशा की यात्रा न करना चाहिये। दूइज और दशमी को उत्तर की ओर जाना अशुभ है।.....पंचमी और तेरस को दक्षिण दिशा लक्ष्मी है और छट्ठ एवं चतुर्दशी को पश्चिम दिशा परम सिद्धदायिनी है।

तीसरा अध्याय

कला-पक्ष

भाषा—शैली—छन्द

और

अलंकार

अन्य प्रेमाख्यानक

'पद्मावत' के लोकतत्वों का अध्ययन करते हुए यह आवश्यक है कि हिन्दी के सूफ़ी कवियों द्वारा प्रणीत कुछ अन्य प्रेमाख्यानक काव्यों के लौकिक स्वरूप पर भी थोड़ा विचार कर लिया जाय। हम इस बात की ओर संकेत कर चुके हैं कि सूफ़ी कवि, अपने धर्म दर्शन में एक प्रकार से अभारतीय होते हुए भी इस देश के लोक जीवन में घुल-मिल गये थे। अपने प्रेमभाव मूलक धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार उन्होंने इस देश में किया और इस देश ही की कल्पना में ढल कर उन्होंने अपने काव्य जगत की अनुपम सृष्टि के लिये मनोरम उपादान (भाषा, छन्द, प्रबन्ध-विधान, कथानक, समाजिक वर्णन आदि) इस देश की मिट्टी से चुने। भारतीय लोक जीवन की अनेक प्रथाएँ, परम्पराएँ, रीतियाँ, आचार-विचार उनके काव्यों में अनुस्यूत हैं। मध्य युगीन भारतीय जन-जीवन को समझने तथा तत्कालीन संस्कृति के लौकिक स्वरूप की ठीक-ठीक व्याख्या करने के लिये उन काव्यों का अनुशीलन बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। पद्मावत का अनुशीलन हमने किया है। अब इस पुस्तक को एक पूर्णता प्रदान करने की दृष्टि से, कुछ अन्य प्रेमाख्यानकों पर विचार किया जा रहा है।

कथाएँ—

मध्य युग (पूर्वार्ध) के प्रेमाख्यानक काव्यों में जायसी कृत पद्मावत के अतिरिक्त निम्नांकित कृतियाँ उल्लेखनीय हैं—

(१) चंदायन	मौलाना दाऊद	रचनाकाल	१३७७ ई० ।
(२) मृगावती	कुतबन	,,	१५०५ ई० ।
(३) मधुमालती	मंझन	,,	१५४५ ई० ।

चंदायन—

सर्व प्रथम, कथा के लौकिक स्वरूप की दृष्टि से 'चंदायन' विचार्य है। मौलाना दाऊद (निवास स्थान—डलमऊ, रायबरेली उ० प्र०) की यह सुप्रसिद्ध कृति, जिसे हिन्दी का प्राचीनतम प्रेमाख्यानक काव्य होने का श्रेय दिया जाता है, अब तक अप्राप्य थी। इधर कुछ दिनों में उसके सचित्र पृष्ठ तथा कुछ खंडित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। कुछ सम्पूर्ण प्रतियों का भी पता चल गया है।[1] इन प्रतियों के आधार पर 'चंदायन' के सम्पादन की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है।

चंदायन की कहानी शुद्ध रूप से एक लोक कहानी है। किसी इतिहास अथवा धर्म दर्शन की ओट के कारण इसकी स्वाभाविकता नष्ट नहीं होने पाई है। मौलाना दाऊद ने इसमें कहानी का वही स्वरूप सुरक्षित रक्खा है जो लोक जीवन की मौखिक परम्परा में आज तक प्रिय और प्रचलित है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग तथा बिहार के शाहाबाद एवं मिथिला जन पदों में यह कहानी 'रानी चनैनी' अथवा 'लोरिकदेव' की कहानी के रूप में प्रसिद्ध है और पँवारे के रूप में गायी जाती है। 'चंदायन' के प्रबन्ध परिधान में निबद्ध यह प्रेम कहानी, जो अपने लोक प्रचलित स्वरूप से अभिन्न है, संक्षेप में इस प्रकार से कही जा सकती है—

'गोचर के राजा महदेव की कन्या चाँदा का विवाह बाल्यकाल में बावन नाम के किसी लड़के से किया गया। सोलह साल बीत जाने

---

१. द्रष्टव्य—'कल्पना'—१२४, पृ० २०।

के बाद चाँदा पूर्ण युवती हुई, ससुराल गई। किन्तु एक वर्ष की अवधि बीत जाने के बाद भी वह अपने पति का प्रेम न पा सकी और निराश होकर मैके वापस लौट आई। एक दिन एक बद्री ने उसे अटारी पर खड़ी हुई देखा और उसके रूप ताप से मोहित होकर वियोगी हो गया। वह दर-दर धूनी रमाता रहा। किसी राज रूपचन्द ने उसका विरह-गायन सुना और चाँदा के नख-शिख सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उक्त सुन्दरी को प्राप्त करने का संकल्प किया। उसने महदेव के नगर पर आक्रमण कर दिया किन्तु लोरिक नामक वीर ने महदेव की सहायता की और रूपचन्द की सेना हार गयी। इधर चाँदा लोरिक के उपकार तथा पराक्रम पर रीझ गई। लोरिक भी चाँदा के सौन्दर्य तथा यौवन पर आसक्त हो उठा। वह उसके लिये योगी बन बैठा। फिर वे दोनों कभी शिव मन्दिर में और कभी महल के भीतरी भाग में चोरी-चुपके मिलते रहे। उनके प्रेम की बात सारे नगर में फैलती गई। चाँदा के माता पिता तथा लोरिक की पत्नी को भी इस प्रेम का वृत्तान्त मालूम हो गया। एक दिन शिव मन्दिर में चाँदा और लोरिक की पत्नी का आपस में झगड़ा हो गया—हाथापाई की नौबत आ गई। चाँदा और लोरिक नगर छोड़कर भाग गये। चाँदा के पति 'बावन' को पता चला तो उसने लोरिक का पीछा किया। लोरिक ने उसे युद्ध में परास्त कर दिया। इसके उपरान्त चाँदा तथा लोरिक एक लम्बी यात्रा तय करके हरदीपाटन पहुँचे। मार्ग में अनेक विपत्तियाँ आयीं। कई अवसरों पर लोरिक को चाँदा का अल्पकालिक वियोग सहना पड़ा। एक बार गोवर से बनजारों का एक दल हरदीपाटन जा रहा था। लोरिक की पत्नी मैना को पता चला तो उसने उस गिरोह के नायक सिरजन को बुलाकर उससे अपनी विरह-कथा कही। चंदायन का यह विरह वर्णन बारहमासे के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सिरजन ने हरदीपाटन पहुँच कर लोरिक से मैना की विरह-व्यथा कह सुनाई। लोरिक द्रवित हुआ। चाँदा के साथ अपने नगर गोवर को वापस लौट आया और अपनी दोनों पत्नियों के साथ सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।"

'चंदायन' की उपर्युक्त कहानी को लिपिबद्ध, छन्दोबन्द्ध तथा काव्य-निबद्ध करने का श्रेय मौलाना दाऊद को है किन्तु कथा की मौलिकता की दृष्टि से वह लोक जीवन के ऋणी हैं। आख्यानक काव्यों की रचना करने वाले प्रायः सभी सूफी कवियों को यह ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। कुछ कवियों ने अपनी कहानी को किंचित् नवीनता अथवा भव्यता प्रदान करने की दृष्टि से यत्र-तत्र इतिहास अथवा कल्पना का अवलम्बन ग्रहण किया है। ऊपर हम इस बात का संकेत कर चुके हैं कि मौलाना दाऊद ने ऐसा कुछ नाम मात्र को ही किया है और इस प्रकार उनके काव्य में उपलब्ध लोक-कथा की स्वाभाविकता सुरक्षित रह गई है।

दो शब्द 'चंदायन' की कथानक रूढ़ियों के सम्बन्ध में भी अपेक्षित हैं। पद्मावत की कथानक रूढ़ियों पर विस्तार पूर्वक विचार करते हुए हम यह देख चुके हैं कि लोक-कथाओं के प्रचलित अभिप्राय साहित्य-गृहीत काव्य कथाओं के निर्माण में महत्वपूर्ण योग प्रदान करते हैं। 'चंदायन' की कथा में उपलब्ध कतिपय प्रमुख कथानक रूढ़ियाँ निम्नांकित हैं--

(क) रूप दर्शन अथवा रूप-गुण-श्रवण द्वारा नायक का नायिका के प्रति मुग्ध हो जाना।

'चंदायन' में इस रूढ़ि का पालन कई स्थलों पर किया गया है। बज्री, रूपचन्द तथा लोरिक सभी चाँदा पर किसी न किसी प्रकार से मुग्ध होते हैं।

(ख) प्रिया के लिये योगी हो जाना।

'चंदायन' कथा में लोरिक योगी का वेश धारण करता है। चाँदा उससे योगी वेश का परित्याग करने के लिये अनुरोध करती है।

(ग) लोकापवाद अथवा किसी अन्य कारण से नायक-नायिका द्वारा देश त्याग, सुदूर-देश की यात्रा और मार्ग में पड़ने वाली विपत्तियाँ।

विवेच्य कथा में इन रूढ़ घटनाओं की भी आयोजना की गई है। लोरिक तथा चाँदा अपना नगर छोड़कर हरदीपाटन की यात्रा करते हैं। मौलाना दाऊद ने इस यात्रा प्रसंग में मार्ग में पड़ने वाली विपत्तियों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है। कई बार चाँदा को साँप काट लेता है। एक बार लोरिक चाँदा को द्यूत क्रीड़ा के दाँव पर हार जाता है। ऐसे सभी अवसरों पर चंदायन के कवि को कथानायक के विरह-विलाप का वर्णन करने का अच्छा मौका मिला है और उसने अपनी विदग्धता का परिचय दिया है।

(६) किसी पशु-पक्षी, किसी यात्रिक अथवा किसी अन्य ऐसे ही माध्यम से नायिका का नायक के पास विरह संदेश भिजवाना।

'चंदायन' में लोरिक की विवाहिता पत्नी मैना एक यात्रीक दल से अपना विरह निवेदन करती है और उसके मुखिया सिरजन से अपने पति के पास सन्देश भेजती है।

यहाँ 'चंदायन' कथा की तीन चार रूढ़ियों का उल्लेख मात्र किया गया है। अन्य कथाओं से तुलना करते हुए इनके बहु प्रचलित स्वरूप पर विस्तार पूर्वक विचार किया जा सकता है। किन्तु, ये सभी रूढ़ियाँ किसी न किसी रूप में 'पद्मावत' कथा में उपलब्ध हैं और इनकी विवेचना की जा चुकी है। अस्तु, पुनरावृत्ति से बचने के लिये इस प्रसंग को यहीं समाप्त किया जाता है।

'चंदायन' 'पद्मावत' की तुलना में कोई डेढ़ सौ वर्ष पूर्ववर्ती कृति है। इसकी रचना अवध प्रदेश की लोक भाषा अवधी में हुई है। मौलाना दाऊद को अपनी इस कृति में अवधी बोली के सहज सौन्दर्य एवं उसकी स्वाभाविक मिठास को सुरक्षित रखने में पर्याप्त सफलता मिली है। छन्द के रूप में चौपाई तथा दोहे का व्यवहार किया गया है। पाँच चौपाइयों के बाद एक दोहा लगाकर कड़वकों की सृष्टि की

ई है। 'पद्मावत' की भाषा शैली तथा छन्द योजना पर विचार करने मय उनमें उपलब्ध बोली के लौकिक स्वरूप तथा व्यवहृत छन्दों के ाकिक उत्स एवं सुदीर्घ परम्परा पर पर्याप्त रूप में विवेचना की गई । यहाँ केवल इतना ही उल्लेख्य है कि अन्य सूफी कवियों की भांति ालाना दाऊद ने भी अपने काव्य की भाषा में संस्कृत अथवा अरबी-ारसी के क्लिष्ट शब्दों का उपयोग नहीं के बराबर किया है। दोहा-ौपाई नामक छन्दों का व्यवहार करके उन्होंने लोक-रुचि की रक्षा की । उनके काव्य में 'बारहमासा' की लोकप्रिय गान शैली भी समाविष्ट ई है। लोरिक की विवाहिता पत्नी मैना सिरजन नामक बनजारे से पने विरह का वर्णन बारहमासे के रूप में प्रकट करती है।

गावती

कहानी के लोक गृहीत स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से कुतबन त 'मृगावती' नामक काव्य-कथा के प्रमुख सूत्र इस प्रकार सँजोये जा कते हैं—

(१) चन्द्रगिरि के राजकुमार का कंचन नगर की राजकुमारी पर मोहित हो जाना।

(२) राजकुमारी का मन्त्र विद्या द्वारा उड़ना और किसी अन्य स्थान को चला जाना।

(३) राजकुमार द्वारा उसकी खोज और दोनों का विवाह।

(४) राजकुमारी का धोखा देकर फिर उड़ जाना।

(५) उसकी खोज में राजकुमार द्वारा योगी का वेश धारण किया जाना।

(६) समुद्र से घिरे किसी पहाड़ पर पहुँचना।

(७) वहाँ रुक्मिणी नामक किसी अन्य राजकुमारी को एक राक्षस के पंजे से छुड़ाना।

(८) राजकुमार का इस दूसरी राजकुमारी से विवाह।

(९) तदुपरान्त राजकुमार का उस नगर में पहुँचना जहाँ मृगावती अपने पिता की उत्तराधिकारिणी बन बैठी है।

(१०) दोनों का मिलन।

(११) राजकुमार का मृगावती के साथ घर लौटना और रुक्मिणी को भी साथ लेते आना।

(१२) राजकुमार की मृत्यु तथा मृगावती और रुक्मिणी का सती होना।

'पद्मावत' अथवा 'चंदायन' की भांति यह 'मृगावती' कथा भी एक प्रेम कहानी है। वैसे तो इस कहानी के द्वारा कवि ने प्रेम मार्ग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक के भगवत्प्रेम का स्वरूप दिखाया है। बीच-बीच में सूफ़ियों की शैली पर बड़े सुन्दर रहस्यमय आभास हैं।"[1] किन्तु इन तथा कथित आध्यात्मिक संकेतों के बावजूद 'मृगावती' की कहानी पूर्ण रूप से एक लोक कहानी है। इसमें न तो अध्यात्म की संगति मिलती है और न इतिहास की विकृति।

मृगावती कथा में उपलब्ध लोकतत्वों की दृष्टि से मन्त्र-विद्या, उड़ने की विद्या तथा राक्षस आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका सम्बन्ध लोक प्रचलित विश्वासों से है। लोक-कथाओं के प्रचलित अभिप्रायों की दृष्टि से 'मृगावती' में व्यवहृत निम्नांकित रूढ़ियाँ उल्लेखनीय हैं--

१. रूप गुण श्रवण अथवा प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा प्रेमोत्पत्ति
२. प्रिया की प्राप्ति के लिये योगी वेश

---

१. रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्यका इतिहास', काशी; संवत् २००५, पृ० ९८।

३. पहाड़, जंगल या किसी अन्य निर्जन स्थान में किसी सुन्दरी का साक्षात्कार

'मृगावती' के कथानक की कई रूढ़ियाँ तथा उपादान 'पद्मावत' में उपलब्ध हैं। 'पद्मावत' परवर्ती कृति है। 'मृगावती' की रचना से कोई पन्द्रह वर्ष बाद उसकी रचना हुई थी। मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में प्रेम कथाओं की जिस परम्परा का उल्लेख किया है उसमें मृगावती का नाम आया है। ऐसा मान लिया जा सकता है कि मृगावती की कहानी बहुत लोकप्रिय थी और जायसी ने 'पद्मावत' की रचना में उसके तत्वों का उपयोग किया। इन दोनों प्रेमाख्यानकों की समाप्ति एक ही ढंग से की गई है। दोनों काव्यों में कथा नायक की मृत्यु के पश्चात् उसकी दोनों रानियाँ सती हो जाती हैं।

मधुमालती

कथा के लोक रूप एवं अन्य लोक तत्वों की दृष्टि से मंझन कृत 'मधुमालती' बहुत महत्वपूर्ण है। कहानी के प्रचलित रूप की दृष्टि से इसकी मौखिक परम्परा संदिग्ध नहीं है। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने समय के प्रचलित प्रेमाख्यानकों के रूप में 'पद्मावत' में इसकी चर्चा की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार यह काव्य मंझन द्वारा जायसी से पहले ही लिखा गया था और इसीलिये जायसी ने इसका उल्लेख किया।[1] किन्तु, अब यह सिद्ध किया जा चुका है कि मधुमालती का रचना काल १५२० ई० है[2] और यह समय 'पद्मावत' के रचना काल १५२० ई०[1] से कोई २५ वर्ष बाद का है। अस्तु,

---

१. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', काशी सं० २००५, पृ० ९८।
२. आचार्य हज़ारी प्रसाद दिवेदी, 'हिन्दी साहित्य', दिल्ली १९५२, पृ० २७०।

यह निश्चित है कि जायसी ने 'मधुमालती' कथा का उल्लेख लोक-जीवन में प्रचलित किसी मौखिक कहानी के रूप में किया था।

'चंदायन' या 'चंदायन', 'मृगावती' तथा 'पद्मावत' आदि प्रेमाख्यानकों की तुलना में नवीन तथा परवर्त्ती होने के कारण 'मधुमालती' में उक्त पूर्ववर्त्ती कृतियों के तत्व पूरी मात्रा में समाविष्ट हुए हैं और कुल मिलाकर यह कृति अपने कथा रूप की दृष्टि से अधिक लौकिक हो उठी है। इसमें वर्णित देशकाल अन्य प्रेमाख्यानकों की अपेक्षा अधिक कल्पना-मंडित तथा आश्चर्यजनक है। इसमें अप्राकृतिक तथा अतिप्राकृतिक तत्वों का समावेश भी अधिक मात्रा में हुआ है। 'मधुमालती' कथा की प्रमुख घटनाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं--

'कुछ अप्सराएँ मनोहर नामक राजकुमार को निद्रावस्था ही में मधुमालती नामक राजकुमारी की चित्रसारी में पहुँचा आती हैं। जागरण के उपरान्त दोनों एक दूसरे के प्रति मोहित होते हैं तथा प्रेमपूर्वक मिलते हैं। इस मिलन के उपरांत वे फिर सो जाते हैं। अप्सराएँ राजकुमार को यथा स्थान वापस पहुँचा आती हैं। जागरण के उपरांत दोनों ओर विरह की व्याकुलता बढ़ती है। राजकुमार मनोहर मधुमालती की खोज में समुद्र यात्रा करता है। तूफ़ान में फँस कर जहाज़ टूट जाता है और वह अपने साथियों से विलग हो जाता है। एक पटरे के सहारे बहता हुआ एक जंगली तट-प्रदेश से जा लगता है। वहाँ किसी प्रेमा नामक एक अन्य राजकुमारी से उसकी भेंट होती है। उक्त राजकुमारी एक राक्षस द्वारा अपहृत है। राजकुमार मनोहर राक्षस का वध करके राजकुमारी का उद्धार करता है। कुमारी

---

१. वही, पृ० २७०।
डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ, हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, अजमेर १६५३, पृ० ४१-४२।

राजकुमार को मधुमालती से मिला देने का वचन तथा आश्वासन देती है। वह मधुमालती की सखी है। कुछ दिनों उपरांत मधुमालती अपनी सखी प्रेमा से मिलने आती है। मधुमालती और मनोहर एक दूसरे से मिलने का अवसर पाते हैं। मधुमालती की माँ पर इस प्रेम मिलन का रहस्य प्रकट होता है। वह मधुमालती से इस प्रेम का परित्याग करने का आग्रह करती है। मधुमालती अपने प्रेम पर दृढ़ रहती है और उसकी माँ क्रुद्ध होकर उसे पक्षी हो जाने का शाप देती है। मधुमालती पक्षी बनकर उड़ जाती है। ताराचन्द नामक एक अन्य राजकुमार उसे पकड़ता है और पिंजरे में क़ैद कर लेता है। पक्षी के ही रूप में मधुमालती ताराचन्द को अपनी प्रेम-कथा सुनाती है। ताराचन्द उसकी सहायता करता है। मधुमालती की माँ मन्त्र-शक्ति के द्वारा उसे शाप मुक्त कर देती है। मधुमालती का पिता ताराचन्द से उसके विवाह का प्रस्ताव करता है। ताराचन्द उक्त प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। इसी बीच मनोहर जोगी वेश में आ पहुँचता है। इस बार पुनः प्रेमा की मध्यस्थता से दोनों मिलते हैं। उनका विवाह हो जाता है। प्रेमा का विवाह ताराचन्द के साथ हो जाता है।'

मधुमालती की उपर्युक्त, उलझी हुई कहानी में प्रचलित प्रेमाख्यानों की कई घटनाएँ थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ ग्रहण कर ली गई हैं। इस कथा के कई सूत्र पूर्ववर्त्ती प्रेमाख्यानक काव्यों—चंदायन, मृगावती, पद्मावत में ज्यों के त्यों उपलब्ध हो जाते हैं। इसमें उपलब्ध होने वाले प्रमुख लोकतत्व निम्नांकित हैं—

(क) अप्राकृतिक बातें—

१. शाप द्वारा रूप परिवर्तन—पंछी हो जाना
२. मंत्र द्वारा रूप परिवर्तन—मनुष्य हो जाना
३. पंछी रूप में मनुष्य की भांति बातचीत करना

(ख) अति-प्राकृतिक तत्व—

१. अप्सराएं
२. राक्षस

(ग) कथानक रूढ़ियाँ

१. आकर्षण जन्य प्रेम
२. समुद्र यात्रा—नौका दुर्घटना
३. निर्जन स्थान में किसी सुन्दरी से साक्षात्कार
४. प्रिया की प्राप्ति के लिये योगी वेश

कुल मिलाकर 'मधुमालती' की कथा एक लोक कहानी है। इसका परिधान एकदम प्रचलित है। अन्य प्रेमाख्यानक कवियों की भांति मियाँ मंझन ने भी अपनी काव्य कथा के लिये लोक जीवन का ऋण स्वीकार किया है—

सन नौ सै बावन जब भये।
सती प्ररुख कलि परिहिर गये॥
तब हम जिय उपजी अभिलाखा।
कथा एक बाँधउँ रस भाखा॥

पद्मावत पर स्वतन्त्र रूप से विचार करते समय यह प्रसंग आ चुका है कि हिन्दी के सभी सूफ़ी कवियों द्वारा लिखे गये आख्यानक काव्य प्रायः प्रेम कहानी के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। एक शब्द में इन्हें 'लौकिक रोमान्स' की संज्ञा दी जा सकती है। इन प्रेमाख्यानकों में ग्रहण की गई कहानियां लोक-जीवन के कल्पना विलास से उद्भूत मनोरंजक कहानियां हैं। इनमें लोक-कथा के अप्राकृतिक, अतिप्राकृतिक तत्वों तथा प्रचलित अभिप्रायों का समावेश पूरी मात्रा में हुआ है। थोड़ी देर के लिये यदि यह विस्मृत कर लिया जाय कि ये प्रेमाख्यान सूफ़ी कवियों द्वारा काव्य निबद्ध अध्यात्म रूपक हैं, कि इनके द्वारा किसी 'अलौकिक प्रिया के प्रति प्रेम निवेदन किया गया है', कि 'इनका

निष्कर्ष एक मात्र सूफी मत का प्रतिपादन ही है'[1] तो इनके द्वारा किसी साधारण कोटि के पाठक का मनोरंजन मात्र होगा और उक्त पाठक इन काव्यों के कथा-रस का सहज अवगाहन कर सकेगा। सूफ़ियों ने इस देश की सम-सामयिक लोक चेतना को आत्मसात कर लिया था। स्वर्गीय आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'उन्होंने अपनी कहानी का वही रूप रक्खा है, जो कल्पना के उत्कर्ष द्वारा साधारण जनता के हृदय में प्रतिष्ठित था।[2]

भाषा, शैली और छन्द

पद्मावत की भाषा और उसके रचना शिल्प पर विचार करते हुए हमने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि इन दृष्टियों से सूफ़ियों के प्रेमाख्यान लोकोन्मुख अधिक हैं। यहाँ 'चंदायन', 'मृगावती' एवं 'मधुमालती' के प्रसंग में कुछ और विचारना अपेक्षित है। 'पद्मावत' की भांति इन काव्यों की भाषा भी अवधी है। भक्तिकाल में अवधी को साहित्यिक भाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ था। रामचरित मानस जैसी अभिजात एवं अलंकृत कृति इसी भाषा में लिखी गई। सूफ़ी कवियों ने भी इसी भाषा को अंगीकार किया किन्तु उन्होंने इसका संस्कार करने अथवा इसे अभिजात एवं अलंकृत बनाने का प्रयास नहीं किया। एक ओर तो उन्होंने अरबी फ़ारसी के शब्दों की ठूँसठाँस नहीं की, दूसरी ओर संस्कृत के क्लिष्ट तत्सम शब्दों का बहिष्कार किया। उनके काव्यों की अवधी परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा नहीं है। वहाँ जनता की बोली का व्यवहार किया गया है। किसी भाषा का जो स्वरूप

---

१. डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', इलाहाबाद १९५४, पृ० ३२८।

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी सं० २००५, पृ० १०२।

साहित्यिकता और अभिजात्य से अलग हटकर लोकवाणी में अनुगुञ्जित रहता है, जिसमें व्याकरण और भाषाशास्त्र के नियमों की अवहेलना रहती है, उच्चारण तथा रचना-गत सतर्कता का अभाव रहता है, सूफ़ी काव्यों में प्रायः उसी भाषा-बोली-के दर्शन होते हैं। ऐसा क्यों हुआ ? सूफ़ी कवियों ने जिस स्रोत से कहानियाँ ली थीं, सुनी थीं, उसी स्रोत से भाषा का सहज लौकिक स्वरूप भी ग्रहण किया।

कुछ लोगों की धारणा है कि अरबी-फ़ारसी लिपि और ध्वनियों का संस्कार होने के कारण सूफ़ी कवि तत्सम संस्कृत शब्दों को आसानी में नहीं पचा सकते थे। इसलिये उन्होंने ठेठ ग्रामीण बोली का पल्ला पकड़ा। यह तर्क बहुत न्याय संगत नहीं प्रतीत होता। वास्तविकता तो यह है कि लोक-कथाओं की रचना के लिये लोक भाषा की अपेक्षा थी। अवध के ग्रामीण अंचलों में प्रचलित कहानियों को एक नवीन मानवतावादी सन्दर्भ देकर लिपिबद्ध करने के लिये भाषागत साहित्यिक सतर्कता ज़रूरी नहीं थी। भाषा का आभिजात्य खतरनाक भी सिद्ध हो सकता था। सूफ़ी कवियों की यह धारणा रही होगी कि क्लिष्ट भाषा के माध्यम से वे अपना प्रेम सन्देश सामान्य कोटि की जनता तक नहीं पहुँचा सकते। उन्हें एक नवीन धर्म-दर्शन का प्रचार करना था। नये सिरे से जनता के मर्म को आन्दोलित करना था। अस्तु, उन्होंने भाषा के सहज, स्वाभाविक, एवं लोकगम्य रूप ही को ग्रहण किया।

शब्दावली, मुहावरे, लोकोक्ति आदि सभी दृष्टियों में पूर्वोक्त प्रेमाख्यानकों की भाषा लोक-रस से सम्पन्न है। मियाँ मंझन अपनी 'मधुमालती' में विरह की महिमा का गान करते हुए कहते हैं--

बिरह उदधि अवगाह अपारा।
कोटि मांह एक पैरनि हारा॥
बिरह कि जगत अहबिरथा जाई।
बिरह रूप यह सिस्टि सबाई॥

नैन बिरह अंजन जेइं सारा।
बिरह रूप दरपन सयंसारा॥

कोटि माहिं बिरला जग कोई।
जाहि सरीर बिरह दुख होई॥

रतन कि सायर सायरहिं? गज मुकुता गज कोइ।
चँदन कि बन बन उपजै, बिरह कि तन तन होइ?

उपर्युक्त उद्धरण में प्रयुक्त 'सारा' एवं 'बिरला' भाषा के ठेठ रूप की सूचना देते हैं। 'सारा' हिन्दी क्रिया 'सारना' का काव्य प्रयुक्त रूप है जिसका प्रयोग आँजने या लगाने के अर्थ में होता है। 'बिरला' विशेषण इक्के-दुक्के या विरल के अर्थ में आया है। इसी प्रकार 'अंबिरथा' (अव्यर्थ), 'दरपन', (दर्पण) 'सरीर' (शरीर) आदि शब्द संस्कृत के घिसे हुए तद्भव शब्द रूपों का परिचय देते हैं। इस उद्धरण के अन्त का दोहा छन्द लोकोक्ति परक है। रत्न क्या प्रत्येक सागर में पाये जाते हैं? गजमुक्ता तो किसी बिरले गज में मिलता है! चन्दन क्या प्रत्येक वन में उत्पन्न होता है? इसी प्रकार, क्या विरह-व्यथा प्रत्येक तन में होती है? अस्तु, इस छन्द की सम्पूर्ण सौन्दर्य व्यंजना लोकोक्तियों के आश्रित है।

भाषा की उपरिविवेचित भंगिमा प्रायः सभी प्रेमाख्यानक काव्यों की निजी विशेषता है। ठेठ तथा तद्भव शब्द रूपों, लोक प्रचलित उक्तियों एवं मुहावरों की दृष्टि से सूफ़ियों के प्रेमाख्यान लोक भाषा के महाकोश हैं। ग्राम्य गिरा अवधी के टकसाली सौन्दर्य की दृष्टि से इनका अध्ययन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

'पद्मावत' की शैली गत विशेषताओं पर विचार करते हुए उसमें उपलब्ध कहानी कहने की लौकिक पद्धति पर विचार किया जा चुका है। कथोपकथन की सामान्य जन शैली तथा भावाभिव्यक्ति की बाँकी

सरलता पर भी विचार किया गया है। ये बातें अन्य विचार्य प्रेमाख्यानक काव्यों में भी मिलती है। इस दिशा में, जायसी, दाऊद तथा कुतबन की परम्परा में आते हैं और मंझन उसी परम्परा की अगली कड़ी सिद्ध होते हैं। शैलीगत साम्य की दृष्टि से प्रेमाख्यानक काव्यों की इतिवृत्ति मूलक दोहा-चौपाई वाली शैली भी उल्लेख्य है। प्रायः सभी सूफ़ी काव्यों में इसी पद्धति का विनियोग हुआ है। 'पद्मावत' की भांति, 'चंदायन', 'मृगावती' तथा 'मधुमालती' दोहा-चौपाई में लिखे गये हैं। अन्तर केवल इस बात का है कि पद्मावतकार ने सात चौपाइयों के बाद दोहा लगा कर कड़वक सृष्टि की है जब कि 'चंदायन', 'मृगावती' तथा 'मधुमालती' में पाँच चौपाइयों के बाद एक दोहे का उपयोग किया गया है।

दोहा-चौपाई के माध्यम से कथा-काव्य लिखने की परम्परा बड़ी प्राचीन है और अन्ततः लोक प्रचलित गाथाओं अथवा वीर गीतों से आई हुई जान पड़ती है। 'पद्मावत' के छन्द-प्रकरण में इस प्रसंग में विस्तार पूर्वक विवेचना की गई है। यहाँ केवल दो बातें और कहनी हैं। साहित्य में दोहा-चौपाई निबद्ध आख्यानक काव्यों की परम्परा एक प्रकार से अपभ्रंश के कड़वक बद्ध काव्यों से शुरू होती है। इस शैली का एक प्राचीन रूप सिद्ध सरहपाद की रचनाओं में उपलब्ध होता है। आगे चलकर स्वयंभूदेव के 'पउमचरिउ' में इसे एक निश्चित दिशा मिलती है। हमारे विवेच्य साहित्य में इसी परम्परा का पूर्ण प्रतिफलन हुआ है।

दोहा तथा चौपाई नामक छन्दों के लोकप्रिय स्वरूप, उनकी लोकानुमोदित परम्परा तथा लौकिक उत्स पर यथेष्ट विचार किया जा चुका है। द्रष्टव्य यह है कि चंदायन, मृगावती, पद्मावत, मधुमालती तथा कतिपय अन्य प्रेमाख्यानों की रचना दोहा-चौपाई नामक छन्दों में ही हुई। 'अनुराग बाँसुरी' के कवि नूरमुहम्मद या कुछ अन्य परवर्ती कवियों ने दोहे के स्थान पर बरवै छन्द का भी प्रयोग किया। किन्तु

यह छन्द भी एक द्विपंक्तिबद्ध लोकप्रिय छन्द के रूप में व्यवहृत किया गया।

विचार्य काव्यों में दोहा या बरवै का उपयोग 'घत्ता' के रूप में किया गया है। 'घत्ता' अपभ्रंश का एक अत्यन्त लयमान तथा लोक प्रिय छन्द रहा है। दुर्भाग्यवश यह हिन्दी में ठीक तरह से चल नहीं पाया और इसके स्थान पर दोहा जिसके अन्तर्गत सोरठा को भी लिखा जा सकता है तथा बरवै जैसे छन्द व्यवहार में आये। सूफ़ी कवियों ने पाँच अथवा सात अर्धालियों के उपरान्त अधिकतर दोहा की यति लगाई और अपने आख्यानक प्रेम काव्यों को दोहा-चौपाई निबद्ध कड़वकों में प्रस्तुत किया।

'बरवै' छन्द पर थोड़ा सा विचार अपेक्षित है। प्रेमाख्यानक काव्यों की सृष्टि में महत्वपूर्ण योग प्रदान करने वाले लोक साहित्य के उपादानों में दोहा तथा चौपाई के अतिरिक्त बरवै छन्द भी उल्लेख्य है। यह छन्द सीधे लोक-साहित्य से लोकगीतों की मिठास लेकर आया और मध्य युग (पूर्वार्ध) में इसकी कारीगरी का अच्छा प्रचार हुआ।

बरवै छन्द की दो काव्य कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—एक तो अबदुर्रहीम ख़ानख़ाना कृत 'बरवै नायिका भेद', दूसरी गोस्वामी तुलसीदास विरचित 'बरवै रामायण'। तुलसीदास को बरवै छन्द में रामचरित लिखने की प्रेरणा अबदुर्रहीम से ही मिली थी और रहीम को इस ललित छन्द की प्राप्ति उनके किसी सिपाही द्वारा हुई थी। सिपाही छुट्टी लेकर घर गया। उसे लौटने में देर हुई किन्तु वह अपनी पत्नी द्वारा लिखित क्षमायाचना के निम्नांकित छन्द के साथ लौटा—

प्रेम प्रीति को बिरवा चलेउ लगाय।
सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय।

इस किम्वन्दती के आधार पर ऐसा मान लिया जा सकता है कि बरवै छन्द मध्ययुग के जन जीवन में एक लौकिक-गान पद्धति के रूप में प्रचलित था। प्राकृत और अपभ्रंश छन्दों की चर्चा करने वाले ग्रन्थ 'बरवै' के विषय में मौन हैं। हिन्दी छन्द विषयक प्राचीन ग्रन्थ, भिखारी दास कृत 'छन्दार्णव', में भी इसका कोई उल्लेख नहीं हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर, निष्कर्ष रूप में, यह कहा जा सकता है कि 'पद्मावत' की भांति अन्य सूफ़ी काव्यों की भी निर्मिति में लोक-साहित्य की विभिन्न परम्पराएँ तथा पद्धतियाँ समाविष्ट कर ली गई हैं। भाषा के अन्तर्गत ठेठ ग्रामीण शब्द, लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे, शिल्प के अन्तर्गत शैली तथा छन्द लोक साहित्य से लिये गये हैं। प्रायः सभी प्रकार की साहित्य सृष्टि में प्रत्येक युग के साहित्य स्रष्टा लोक जीवन तथा लोक साहित्य में थोड़ी बहुत ताज़गी प्राप्त करते रहे हैं, किन्तु इस दिशा में हिन्दी के प्रेमाख्यानक कवियों की उपलब्धियाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

लोक-जीवन

हमारे विचार्य साहित्य में लोक जीवन का बड़ा विशद अंकन हुआ है। वैसे तो प्रत्येक साहित्य समसामयिक युग-जीवन का दर्पण हुआ करता है किन्तु सूफ़ियों के प्रेमाख्यान ठेठ अनभिजात सामाजिक स्तर के प्रतिनिधि हैं। लोक जीवन की अनेक प्रथाएँ-परम्पराएँ, आचार-विचार, रीति-रिवाज, अन्ध-विश्वास तथा मूढ़ाग्रह इन प्रेमाख्यानक काव्यों में सुरक्षित हैं। लोक वार्त्ता (फोक-लोर) के अध्ययन की दृष्टि से इन सब का महत्व सर्वोपरि है। 'पद्मावत' के लोक वार्त्ता विषयक प्रकरण में हम इस दिशा में कुछ विचार कर चुके हैं। हमने देखा है कि उक्त कृति में लोक जीवन के विभिन्न कृत्य, उत्सव, प्रथाएँ तथा विश्वास वर्णन का प्रमुख अंश बन कर आये हैं। ठीक इसी प्रकार चंदायन, मधुमालती तथा मृगावती आदि कृतियों में कथानक को

अग्रसरित करने अथवा अभिलषित दिशा में मोड़ देने के लिये लोक-जीवन के विभिन्न उपादानों का समावेश किया गया है।

'चंदायन' में बज्री साधु का उल्लेख महत्वपूर्ण है। वह चाँदा को देखकर मुग्ध हो जाता है और फिर दर-दर विरह गायन करता हुआ धूनी रमाता फिरता है। 'मृगावती' तथा 'मधुमालती' में भी किसी न किसी रूप में तांत्रिक अथवा योगी का उल्लेख हुआ है। 'पद्मावत' के योगी रूप पर हम पीछे विचार कर चुके हैं। इस सबसे पता चलता है कि विवेच्य युग में सामान्य जनता के बीच योगियों और तांत्रिकों का बोल बाला था। ये लोग अपने तंत्र-मंत्र का चमत्कार दिखाते हुए यहाँ वहाँ घूमा करते थे। बौद्ध धर्म की महायान शाखा की परिणति वज्रयानी साधुओं के रूप में हुई थी। प्रेमाख्यानों में जिस रूप में इनका वर्णन हुआ है उससे पता चलता है कि ये लोग आचरण भ्रष्ट हो चुके थे। किसी सुन्दरी को देखकर उस पर रीझ जाना इनके लिये सामान्य बात थी।

द्यूतक्रीड़ा तथा सती प्रभृति उल्लेखों से तत्कालीन सामाजिक रहन-सहन का पता चलता है। सामाजिक जीवन के ये तत्व भी प्रेमाख्यानकों में ग्रहण किये गये हैं। पद्मावत कथा की दृष्टि से सती प्रथा पर विचार किया गया है। पद्मावत में रत्नसेन की मृत्यु के उपरान्त उसकी दोनों रानियाँ सती हो जाती हैं। ठीक इसी प्रकार 'मृगावती' में राजकुमार की मृत्यु के उपरान्त मृगावती तथा रुक्मिणी सती हो जाती हैं। द्यूत क्रीड़ा का वर्णन चंदायन में आया है। लोरिक चाँदा को जुये के दाँव पर हार जाता है। यह घटना अचानक हमें महाभारत कथा की याद दिला जाती है। महाभारत में पांडव अपनी पत्नी द्रौपदी को चौपड़ के दाँव पर हार गये थे। पद्मावत में उपलब्ध चौपड़ खेल के वर्णन तथा चंदायन के द्यूत क्रीड़ा वृत्तान्त से तत्कालीन समाज में इस प्रकार के मनोरंजन के प्रति गहरी रुचि का पता चलता है।

प्रेमाख्यानकों में राक्षस सम्बन्धी अंध विश्वास को भी अंकित किया

गया है। लोक कथाओं का यह अमानवीय चरित्र सामान्य ग्रामीण जीवन में अब भी नाना किंवदंतियों का विषय बना हुआ है। पद्मावत में इसे लंका के काले राक्षस के रूप में चित्रित किया गया है। मृगावती की कहानी में उसे समुद्र से घिरे पहाड़ी निर्जन स्थान का प्राणी कहा गया है और उसने रुक्मिणी नामक एक राजकुमारी को कैद कर रक्खा है। 'मधुमालती' में यह राक्षस पुनः इसी रूप में आया है और इसने राजकुमारी प्रेमा को कैद किया है। पौराणिक उपाख्यानों तथा निजंधरी कथाओं में राक्षस का वर्णन प्रायः इन्हीं रूपों में हुआ है। लोक मानस भूत-प्रेत राक्षस आदि के इन रूपों के प्रति आस्थावान तथा आतंकित रहा है। हिन्दी साहित्य के मध्ययुग तक इस प्रकार के अंध-विश्वास जनता में खूब प्रचलित थे। अस्तु, मनोरंजन तथा लोक शिक्षा सम्बन्धी कहानियों में भी पदे पदे इनकी अवतारणा की जाती थी।

अभिशाप, वरदान और तंत्र-मंत्र के प्रति लोक मानस सदैव आस्था-शील रहा है। मनुष्य के जिन समुदायों में आधुनिक ज्ञान की किरण अब तक नहीं पहुँच सकी है, वहाँ वह आस्था ज्यों की त्यों वर्तमान है। योगी, सन्यासी तथा औलिया फ़कीर इस देश में सदा से पूजित रहे हैं। ये लोग तप-योग और ईश्वर की आराधना के कारण अलौकिक शक्ति से सम्पन्न प्राणी समझे जाते हैं। सहज प्रकृति का मनुष्य इनके प्रति श्रद्धा-नमित रहा है। कहीं ऐसा न हो कि कोई योगी या कोई भी सिद्धि-प्राप्त अन्य व्यक्ति किसी ज्ञात या अज्ञात अपराध के कारण रुष्ट होकर श्राप दे दे। ऐसे सिद्धि सम्पन्न चमत्कारी लोगों को सेवा भाव से प्रसन्न करके आशीर्वाद या वरदान प्राप्त कर लेने की बात तो अत्यन्त प्रचलित है। किसी ब्राह्मण को भोजन देकर या साधु संतों की सेवा करके यह आशा की जाती है कि किसी बड़े पुण्य का उदय होगा। वरदान और अभिशाप से सम्बद्ध ये लोक-व्यापी विश्वास हमारे विवेच्य साहित्य में ग्रहण किये गये हैं। अभिशाप सम्बन्धी घटना के लिये 'मधुमालती' की कहानी द्रष्टव्य है। मधुमालती और राजकुमार मनोहर का प्रेम जब

मधुमालती की माँ पर प्रकट होता है तो वह अपनी पुत्री को श्राप दे बैठती है। फलस्वरूप मधुमालती पक्षी बनकर उड़ जाती है।

विचार्य साहित्य में गृहीत लोक प्रचलित विश्वासों के रूप में तंत्र-मंत्र सम्बन्धी उल्लेख महत्वपूर्ण हैं। पद्मावत में उपलब्ध लोक-जीवन के तत्वों के रूप में इन पर विचार नहीं किया गया है। अस्तु, प्रस्तुत प्रसंग में थोड़ा विस्तार अपेक्षित है। 'मंत्र' चार प्रकार के माने गये गये हैं। इनमें 'वेदमंत्र', 'गुरुमंत्र' और 'प्रार्थना मंत्रों' को छोड़ कर चौथे प्रकार के मंत्र जादू टोना और ओझाई आदि से सम्बद्ध हैं। लोक-जीवन सामान्यतः इसी कोटि के मंत्रों के प्रति आस्थाशील है। इस देश में बौद्ध युग और उसके परवर्त्ती काल में तंत्र-मंत्र की साधना पराकाष्ठा पर थी। तांत्रिक सिद्ध अपने विभिन्न प्रकार के कारनामों से जनता में एक मिथ्या धर्म का प्रचार करते फिरते थे। सम्भवतः उसी युग में तंत्र-मंत्र और जादू टोने से सम्बद्ध अनेक प्रकार की भ्रांत धारणाएँ जनता में घर कर गईं। कालान्तर में लोक साहित्य में भी इन धारणाओं की व्यापक अभिव्यक्ति की जाने लगी। लोक प्रचलित कथा-कहानियों में मंत्र बल से किसी व्यक्ति का सुग्गा हो जाना, कुत्ता बनकर भूँकना आदि असाधारण और आश्चर्यजनक घटनाएँ लोक जीवन में व्याप्त विश्वासों पर आश्रित हैं।

प्रेमाख्यानक काव्य साहित्य में लोक जीवन के अन्यान्य रीति-रिवाजों एवं मूढ़ाग्रहों की भांति तंत्र-मंत्र सम्बन्धी विश्वासों की पर्याप्त अवतारणा की गई है। 'चंदायन' की कहानी से 'विषहर मंत्र' की सूचना मिलती है। साँप द्वारा डसी गई नायिका को जीवित करने के लिये इस मंत्र से अधिक कारगर और कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता था। विवेच्य युग से इस मंत्र के प्रति व्यापक रूप से विश्वास किया जाता था। कबीर बीजक की 'बिरहुली' भी विषहर मंत्र से सम्बद्ध एक लोक प्रचलित गान शैली की सहज अनुकृति है। मंत्र-शक्ति और तत्सम्बन्धी विश्वास का एक अन्य रूप कुतबन की 'मृगावती' में

उपलब्ध होता है। राजकुमारी मृगावती मन्त्र-शक्ति द्वारा स्थान परिवर्तन की विद्या जानती है। वह अपने प्रेमी को धोखा देकर उड़ जाती है। उक्त प्रेमी उसे किसी प्रकार ढूँढ़ निकालता है, दोनों का विवाह हो जाता है, किन्तु मृगावती दुबारा अपने पति के साथ छल करती है और अपनी उसी मन्त्र शक्ति द्वारा कहीं और उड़ जाती है।

निष्कर्ष

'पद्मावत' के प्रसंग में हम यह निवेदन कर चुके हैं कि जायसी की यह कृति विभिन्न प्रकार के लोक तत्वों से अभिमंडित है। कथा-कहानी, काव्य शिल्प (भाषा, शैली, छन्द) आचार-विचार आदि नाना दृष्टियों से यह रचना लोकोन्मुख अधिक है और शास्त्रोन्मुख कम। हमने ऊपर जो कुछ अध्ययन-विश्लेषण प्रस्तुत किया है उसके आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कठिन न होगा कि सूफ़ी कवियों द्वारा लिखा गया समस्त प्रेमाख्यानक साहित्य 'पद्मावत' की प्रकृति का है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने एक स्थान पर कहा है कि 'कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर मध्ययुग का समस्त साहित्य वास्तविक लोक साहित्य है।' आचार्य द्विवेदी की यह उक्ति प्रेमाख्यानक साहित्य के लिये अधिक लागू होती है। प्रेमाख्यानक काव्य के रचयिताओं के नाम यदि विस्मृत कर दिये जायँ और यदि उसके लिपिबद्ध स्वरूप के स्थान पर किसी मौखिक परम्परा की कल्पना कर ली जाय तो उसे लोक-साहित्य मानने में किसी को कोई आपत्ति न होगी। सूफ़ी कवियों द्वारा लिखे गये प्रेमाख्यान यदि लोक साहित्य की सूची में नहीं आ पाते तो महज़ इस लिये कि वे सतर्क सोद्देश्य क्षणों की रचना हैं और साहित्य की इतिहास परम्परा में उनका एक लिपिबद्ध स्वरूप सुरक्षित है, अन्यथा उनकी सम्पूर्ण प्रकृति लौकिक है और उनकी निर्मिति में लोक जीवन तथा लोक साहित्य विभिन्न उपादानों का विपुल संयोग हुआ है।

हमने कहा है कि इन प्रेमाख्यानकों के रचयिताओं की दृष्टि इस सम्बन्ध में स्पष्ट थी कि यदि उन्हें अपने सन्देश को, अपने प्रेम-परक

दर्शन को जनसाधारण तक पहुँचाना है तो उसका सर्व श्रेष्ठ माध्यम ये लोकप्रिय, लोकप्रचलित काव्य ही हो सकते हैं। इन काव्यों के कथानक अपने प्रेम-परक स्वरूप और गढ़न के कारण जन मानस को आन्दोलित एवं प्रभावित करने में सहज ही सक्षम थे। इन कवियों ने इसीलिये, इन प्रेमाख्यानों को स्वीकार किया और उनके माध्यम से अपनी विचारधारा, अपना दर्शन, अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इन प्रेमाख्यानकों में इन सूफी कवियों ने प्रेम की शारीरिकता से कतराना उचित नहीं समझा। 'पद्मावत' और 'मधुमालती' दोनों में शारीरिकता का दर्शन होता है। ऐसा क्यों है? 'मेरी समझ में इसका उत्तर यही है कि इन सन्तों ने जीवन को एक समग्र रूप में देखा है। उनका जीवन-दर्शन शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा नहीं करता। यह अवश्य है कि वह शारीरिक आवश्यकताओं को मर्यादित रखने का उपदेश करता है। इस शारीरिकता के अभाव में पुरुष और नारी की प्रेम-कल्पना मिथ्या होती, इसलिये सूफी साधकों की यह मर्यादित शारीरिकता उनकी आध्यात्मिक प्रेम-साधना का एक ऐसा अंग है जो उनकी दृष्टि में उनके लक्ष्य में बाधक नहीं होता।'[1] और, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इन कवियों ने इस सम्बन्ध में लोक परम्परा का ही अनुसरण किया है और अपनी रचनाओं का लौकिक स्वरूप ज्यों का त्यों रहने दिया है। उसमें आवश्यक काट-छाँट करके उसे अलौकिक रूप प्रदान करने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी।

---

१. डाक्टर माता प्रसाद गुप्त—'मधुमालती' पृ० २६, भूमिका।

उपसंहार

उपसंहार

'पद्मावत' की निर्मिति में लोक-साहित्य और लोक-वार्ता (फोक-लोर) के विविध उपादानों का बहुत बड़ा योग है। भाषा, भाव, विचार, शैली, छंद, अलंकार, कथा और वार्ता आदि सभी दृष्टियों से यह काव्य लोकोन्मुख अधिक है। इसे संस्कृत साहित्य की महाकाव्यों की परम्परा से सम्बद्ध एवं शास्त्रीय पद्धति पर लिखे गए प्रबन्ध काव्यों की कोटि में स्थान नहीं दिया जा सकता। वैसे तो यह काव्य 'मसनवी-शैली' का काव्य कहा जाता है और इसमें साहित्य-दर्पणकार द्वारा गिनाये गए प्रबंध काव्य के लक्षणों को भी थोड़ी बहुत मात्रा में ढूँढा जा सकता है, परन्तु वस्तुतः इस काव्य की मूल चेतना 'लोक' की है, शास्त्र की नहीं! काव्य के ऊपरी ढाचे की दृष्टि से यह एक अभिजात-साहित्यिक-कृति है, किन्तु इसका आन्तरिक स्पंदन लौकिक है।

ऊपर-ऊपर से देखने पर तो ऐसा जान पड़ता है कि यह काव्य इतिहासाश्रित है और इसकी अनेक घटनाएँ इतिहासानुमोदित हैं, परंतु वस्तुतः इसमें इतिहास की नाम मात्र की झाँक है। पद्मावतकार ने 'रत्नसेन' और 'अलाउद्दीन' जैसे कुछ नाम एवं 'अलाउद्दीन का चित्तौड़ आक्रमण' जैसी कुछ घटनाएँ इतिहास से ली हैं, लेकिन उसने इन नामों और इन घटनाओं के चयन में अपनी कवि-कल्पना का भी पर्याप्त सहारा लिया है। कथानक के गुंफन और विकास में इन कुछ गिने चुने ऐतिहासिक तत्वों का लोप हो गया है और कहानी कुल मिलाकर कवि-

कौशल द्वारा सृजित एक ऐसी सामान्य कथा बन गई है जिसके निर्माण एवं विकास में लोक-कथा-रूढ़ियों का पर्याप्त योग है।

कहानी का सम्पूर्ण ढाँचा (फ्रेम) जन-जीवन की मौखिक परम्परा में सुरक्षित लोकाख्यानों जैसा ही है। जहाँ कहीं भी कहानी में नए मोड़ आए हैं एवं कथानक नई दिशा की ओर अग्रसर हुआ है वहाँ लोक-कथाओं के सामान्य अभिप्रायों (मोटिफ़्स) का योग है। इन लोक-रूढ़ियों पर आधारित एवं विकसित होने के कारण कथानक अपने संपूर्ण रूप में लोकाख्यानक है। लोक-कथाओं का आश्रय लेकर कथा-काव्य लिखने की परंपरा इस देश में बड़ी पुरानी है। 'पद्मावत' इसी परम्परा का श्रेष्ठ ग्रन्थ है।

भारतीय चिन्ता में सूफ़ी काव्यों का मूल्यांकन बहुधा साहित्यिक दृष्टि से होता है। पर, कुछ लोग उन्हें धार्मिक प्रचार की दृष्टि से लिखी हुई वस्तु समझते हैं, और यही कारण है कि सभी सूफ़ी काव्यों को सूफ़ी सिद्धांतों का प्रचारक मान लिया जाता है। 'पद्मावत' पर भी इस प्रचार्य-रूप का आरोप किया है। प्रमाण स्वरूप पद्मावतकार का यह औपसंहारिक छन्द प्रस्तुत किया जाता है--

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जे तर उपराहीं। ते सब मानुष के घट माहीं॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा॥
गुरू सुआ जेइ पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनियाँ धन्धा। बाँचा सोइ, न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू॥
प्रेम कथा एहि भांति विचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु॥

प्रस्तुत रूपक 'पद्मावत' के लोक-कथा-रूप पर एक बहुत बड़ा आघात

है। लोक-कथाओं द्वारा नीति-शिक्षा और धर्मोपदेश तो दिया जाता है, पर वहाँ सारी की सारी कहानी रूपक रूप में कोई सांकेतिक अर्थ नहीं रखती। इस दृष्टि से यह विचारणीय है कि उपर्युक्त छन्द मूलतः पद्मावतकार की रचना है या नहीं।

आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' के सम्पादन में प्रस्तुत छन्द को स्थान दिया है। आचार्य पण्डित चन्द्रबली पाण्डेय ने इसे प्रामाणिक एवं जायसी की रचना माना है। किन्तु, डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने अपने 'जायसी ग्रन्थावली' के वैज्ञानिक सम्पादन में इस रूपक-छन्द को अप्रामाणिक और पद्मावत की परवर्ती प्रतिलिपियों का प्रक्षिप्त अंश माना है।

इस छन्द को पद्मावतकार की निजी रचना मानने में दो बड़ी बाधाएँ हैं। एक तो यह सारा रूपक पूरी कथा के साथ ठीक नहीं उतरता और स्वयं इसके द्वारा पद्मावतकार की कुछ मान्यताओं का खण्डन हो जाता है। दूसरे इस छन्द की भाषा में पद-रचना सम्बन्धी कुछ ऐसी गड़बड़ियाँ हैं जिनके कारण सहसा यह विश्वास नहीं होता कि यह भूलें पद्मावतकार ने ही की हैं।

सम्पूर्ण रूपक इस प्रकार है :

तन	चित्तौड़
मन	राजा (रत्नसेन)
हृदय	सिंहल द्वीप
बुद्धि	पद्मिनी (पद्मावती)
गुरु	हीरामन शुक
दुनिया धन्धा	नागमती
शैतान	राघव दूत
माया	अलाउद्दीन

इनमें से अन्त के तीन रूपक कथा के स्वाभाविक और काव्यात्मक स्वरूप के मेल में ठीक नहीं बैठते। सबसे पहले नागमती को लें। वह रत्नसेन की प्रथम विवाहिता पत्नी है। उसका चरित्र एक पतिव्रता, हिन्दू गृहिणी, के रूप में चित्रित हुआ है। रत्नसेन के सिंहल चले जाने के बाद उसका विरह और रत्नसेन की मृत्यु के पश्चात् पद्मावती के साथ-साथ उसका भी सती होना, ये दो ऐसी बातें हैं जो उसके चरित्र को बहुत ऊँचा उठा देती हैं। इसलिये वह पद्मावती की तुलना में किसी भी प्रकार कम नहीं है। किन्तु, आश्चर्य होता है कि पद्मावतकार ने उसे किस प्रकार दुनिया-धन्धा कहा है। प्रस्तुत उद्धरण में राघवचेतन को दूत कहा गया है। किन्तु, पद्मावत की सारी कहानी में राघव चेतन 'दूत रूप' में कहीं भी चित्रित नहीं हुआ है। तीसरा रूपक अलाउद्दीन का है। उसे 'माया' माना गया है। रत्नसेन की भांति वह भी 'प्रज्ञास्वरूपा' पद्मावती को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करता है। यदि सचमुच सारा पद्मावत सूफ़ी साधना का रूपक है और पद्मावती ईश्वर की प्रतीक है तो अलाउद्दीन को इसीलिये 'माया' नहीं कहा जा सकता कि वह उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। राघवचेतन को शैतान और अलाउद्दीन को माया कहना एक और दृष्टि से ठीक नहीं। कथा में रत्नसेन और पद्मावती के मिलन के पश्चात् इनका उल्लेख आता है। रत्नसेन मन का और साधक का प्रतीक है। पद्मावती प्रज्ञास्वरूपा बुद्धि और ईश्वर की प्रतीक है। यहाँ विचारणीय बात यह है कि साधक और साध्य, प्रेमी-भक्त और प्रियतम-भगवान के मिलन के पश्चात् शैतान और माया का क्या महत्व? साधना की अपूर्णावस्था में साधक को पथ से विचलित करने के लिये तो उनका कुछ प्रयोजन हो सकता है, पर साधक द्वारा साध्य-रूपी भगवान की प्राप्ति के पश्चात्, उनका तो अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत उद्धरण में पद-क्रम सम्बन्धी एक बड़ी भूल है। इस रूपक में कथा की नायिका पद्मावती को बुद्ध और सिंहल द्वीप को हृदय कहा गया

है किन्तु, इस दृष्टि से–'हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा' की संगति नहीं बैठती। यहाँ 'सिंहल हिय पद्मिनि बुधि चीन्हा' होना चाहिये था।

इस प्रकार इस रूपक छन्द की प्रामाणिकता नितान्त संदिग्ध है। प्रस्तुत विद्यार्थी, डाक्टर माताप्रसाद गुप्त के वैज्ञानिक सम्पादन के अनुसार, इसे अप्रामाणिक और पद्मावत की बाद की प्रतिलिपियों का प्रक्षिप्त अंश मानता है। यह करामात किसी कट्टर सूफ़ी प्रचारक की रही होगी जिसने पद्मावत को सैद्धांतिक जामा पहनाने की धुन में यह कृत्य किया होगा। पद्मावत के रूपक-रूप के गलत सिद्ध हो जाने के बाद उसकी कथा का लोक-रूप और भी निखर उठता है। अब हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि पद्मावतकार ने अपनी कहानी को लोक-कथाओं का आकार दिया है। उसने उसे किसी धार्मिक या सैद्धांतिक रूपक के रूप में नहीं प्रस्तुत किया है।

कुल मिलाकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कथानक की दृष्टि से पद्मावत लोक-कथाओं के बहुत निकट है। उसमें कथानक उपादान स्वरूप अनेक लोक-अभिप्रायों का योग है। इस कथानक में किसी इतिहास या धार्मिक सिद्धांत को ढूँढ़ना तो बिलकुल बेकार है।

भाषा, शैली, छन्द और अलंकार की दृष्टि से पद्मावत अभिजात-साहित्य (क्लैसिकल लिटरेचर) की रूढ़िबद्ध परंपरा से दूर की वस्तु है। काव्य के इन विभिन्न उपादानों द्वारा पद्मावतकार ने लोक-जीवन की निकटता प्राप्त की है और इसीलिये इन सबकी योजना लोक-भूमि के स्वच्छन्द और उन्मुक्त वातावरण में की गई है। इस काव्य की भाषा-लोक-भाषा है। कवि ने इसका वही रूप अपनाया है जो पूर्वी अवध के गाँवों में बोला जाता है। शब्द अपने तद्भव रूप में व्यवहृत हुए हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग बाहुल्य के कारण भाषा का लोक प्रवाह सुरक्षित है। व्याकरण की दृष्टि से उसका व्याकरण बोलचाल की अवधी का है।

शैली सम्बन्धी उपादान भी लोक के हैं। कवि ने कथाकार के रूप में स्थान-स्थान पर पाठक के कुतूहल को जाग्रत किया है। उसने कई

स्थलों पर लोक-कथाओं की भांति उपदेश दिए हैं। जन जीवन की सामान्य बात-चीत की शैली के व्यवहार और भावाभिव्यंजना के सारल्य के कारण शैली का लोक-रूप और भी उभर आया है। जहाँ तक छन्दों का प्रश्न है, पद्मावतकार के सम्मुख दोहरे और चौपाई की एक बहुत बड़ी साहित्यिक परंपरा थी। किन्तु, मूलतः ये छन्द लोक-गीतियों की मात्रिक एवं गीतात्मक परम्परा के छन्द हैं। ये संस्कृत के वर्णिक छन्दों से भिन्न हैं। इनका प्रारम्भिक प्रयोग अपभ्रंश साहित्य में हुआ और किंचित् अपभ्रंश ने इन्हें लोक-कण्ठ से अपनाया था।

प्रकृति वर्णन के रूप में पद्मावतकार ने लोक-गीतों की बारहमासा शैली को अपनाया है। इसके अतिरिक्त प्रकृति चित्रण के आलंबन, उद्दीपन और अलंकरण वाले अधिकांश चित्र भी लोक-गीतों की स्वच्छंद कल्पना से पर्याप्त मात्रा में मेल खाते हैं। उपमान दो कोटि के हैं। शास्त्रीय और स्वच्छंद एवं मौलिक, इनमें मौलिक उपमान लोक-गीतों और लोक-काव्यों में जो प्रकृति चित्रण मिलता है उसकी विशेषता है साहित्य के रूढ़िगत प्रकृति चित्रों की तुलना में उसका नयापन। उसकी स्वच्छंद और सरल कल्पना। पद्मावत के प्रकृति चित्रों में भी वैसी ही नूतनता, वैसी ही स्वच्छंदता और कल्पना का वैसा ही सारल्य मिलता है।

लोक-कहानी, लोक-गीत, लोक-भाषा, लोक-शैली, लोक-छन्द और लोक-उपमान आदि का सम्बन्ध एक विशाल लोक साहित्य से है। पद्मावत की निर्मिति में लोक-साहित्य के ये विभिन्न अवयव उपादान स्वरूप सहायक हुए हैं। इनके साथ-साथ लोकवार्ता के अन्य बहुत से तत्व भी पद्मावतकार द्वारा गृहित हुए हैं। इस ग्रन्थ में लोक जीवन के अनेक प्रकार के कृत्यों, उत्सवों, प्रथाओं और विश्वासों का भी समावेश हुआ है। इनके कारण पद्मावतकार के सम-सामयिक लोक-जीवन पर प्रकाश पड़ता है और तत्कालीन समाज की बहुमुखी लोक परंपराओं का बोध होता है।

परिशिष्ट

(१) लोकोक्तियों की सूची
(२) मुहावरों की सूची
(३) सहायक ग्रन्थों की सूची
(४) पत्रिकायें
(५) अंग्रेजी के सहायक ग्रन्थ

लोकोक्तियों की सूची

क्रम संख्या	लोकोक्तियाँ	पृष्ठ संख्या
१.	मेटि न जाइ लिखी जस होनी	१७
२.	बिधि कर लिखा मेटि नहि जाई	२१
३.	मोतिहि मलिन जो होइ गई कला पुनि सो पानि कहाँ निरमला	२१
४.	सत्रु अहै जो करिया कबहुँ सो बोरै नाव	२२
५.	तिल फूलहि के संग ज्यों होइ फुलायल तेल	२५
६.	कौन पानि जेहि पौन न मिला	२५
७.	यह मन कठिन मरै नहि मारा	२७
८.	गाठि साठि मुठि थोर	३०
९.	बड़े के आगे जो पड़ै दून लाभ तेहि होइ	३१
१०.	लोनी सोइ कंत जेहि चहै	३४
११.	दीप ताहि जेहि सूझ न आगू	३५
१२.	तुरय रोग हरि माथे जाए	३५
१३.	कान दुवौं जेहि पहिरे का लेइ करब सो सोन	३६
१४.	बिनु सत जन सेवर कर भूआ	३८
१५.	जहाँ सत्य तहँ धरम संघाता	३८
१६.	को लेइ आव सजीवन मूरी	४९
१७.	निकसे घिउ न बिना दधि मथे	५१

क्रम संख्या	लोकोक्तियाँ	पृष्ठ संख्या
५२.	बिफल न जाहिं काहु कर सेवा	१९१
५३.	दिस्टि सो धरम पंथ जेहि सूझा	१९९
५४.	ज्ञान सो जो परमारथ बूझा	१९९
५५.	जोगि, जो रहै समाधि समाना	१९९
५६.	सोइ सिंगार कंत जो चहा	१९९
५७.	कवि कै जीभ खड्ग हरद्वानी एक दिसि आगि दुसर दिसि पानी	२०१
५८.	बाउर बहिर सीस पै धुना आपनि कहै, पराइ न सुना	२०२
५९.	भीख भिखारी दीजिये का बाम्हन, का भाँट	२०५
६०.	जियत सिंघ कै गह को मोछा	२१९
६१.	आगि जो जरै आगि पै सूझा जरत रहै, न बुझाये बूझा	२२०
६२.	जहं बीरा तहं चून है पान, सोपारी काथ	२२३
६३.	गगन धरति जेहि टेका तेहि का गरू पहार	२२४
६४.	पाहन कर रिपु पाहन हीरा	२३८
६५.	भोर हाइ जौ लागे उठहिं रोर कै काग मसि छूटै सब रैनि कै, कागहिं केर अभाग	२४०
६६.	चन्द जो बसै चकोर चित नैनहिं आव न सूर	२५०
६७.	जो छल करै ओहि छल बाजा जैसे सिंघ मंजूसा साजा	२५२

क्रम संख्या	लोकोक्तियाँ	पृष्ठ संख्या
६८.	बैठि सिंहासन गूँजै, सिंघ चरै नहिं घास जौ लगि मिरिग न पावै, भोजन कै उपास	२७८
६९.	लोह-पखान पुरुष कर बोला	२५५
७०.	लोहे ते पलुहहिं उकठे रूखा	२५७
७१.	छुर कीजै वर जहाँ न आँटा लीजै फूल टारि के काँटा	२६०
७२.	सोइ पाव जो लिखा लिलाटा	२६१
७३.	सुभर सरोवर जौ लहि नीरा बहु आदर पंखी बहु तीरा	२७१
७४.	लोभ पाप कै नदी अंकोरा सत्त न रहै हाँथ जौ बोरा	२८७
७५.	जहाँ फूल तहँ फूल है जहाँ काँट तहँ काँट	२८८
७६.	छोड़ी राम अयोध्या जो भावै सो लेव	२९८
७७.	जे रे उबा से अथवा रहा न कोइ संसार	३००

मुहावरों का सूचक

क्रम सं०	लोक-प्रचलित रूप	काव्य-गृहीत रूप	पृष्ठ संख्या
१.	आँख न लगाना	पिता हमार न आँख लगावहिं	२१
२.	प्राण लेकर भागना	जिउ लै उड़ा ताकि बन ढाँखा	२७
३.	बात चलना	आइ बात तेहि आगे चली	३१

क्रम सं०	लोक-प्रचलित रूप	काव्य-गृहीत रूप	पृष्ठ संख्या
४.	रास्ता लेना	भा चितउर के पंथ....	३१
५.	नमक लगना	हिये लोन अस लाग....	४३
६.	छोटे मुँह बड़ी बात	अस बड़ बोल जीभ मुख छोटे	३५
७.	कलेजा फटना	दारिउँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरबिक....	४४
८	तिलतिल जलना	जेइ तिल देखि सो तिल-तिल जरा	४४
९.	पकी पकाई खाना	तुम राजा जेइ घर पोई	५०
१०.	आग पानी न देखना	देखै किछु न आग नहिं पानी	६०
११.	बीड़ा देना	राजै दीन्ह कटक कहं बीरा	६६
१२	आगे देखकर पैर रखना	आगे देखि पवि धरु नाथा	९५
१३.	प्राण पर खेलना	तस ए दुवौ जीउ पर खेलहिं	१०३
१४	महाभारत करना	आजु करहिं रन भारत	१०४
१५.	बिजली मार जाना	राघव बिजुरी मारा	२०१
१६.	अँगूठी का नगीना	सो नग लेउँ जो कनक अँगूठी	२१७
१७.	जल उठना	सुनि अस लिखा उठा जरि राजा	२१८
१८.	आकाश चढ़ना		
१९.	पाताल में गिरना	चढ़ै सरग, खसि परै पतारा	२१८
२०.	फूँक से पहाड़ उड़ाना	परबत उड़हि सूर के फूँके	२१८
२१.	अपने को जनाना	बोलु न, राजा ! आपु जनाई	२१९
२२.	जब तक दम में दम	जा लहि जिउ काया महं	२२८
२३.	आकाश छेदना	धुसि कै सरग सुरंग तिन्ह दीन्हा	२३८
२४.	हृदय अघाना	हियरा जात सेरात. .	२४४
२५.	नमक की तरह गलना	नमक दिये होइ लोन बिलाई	२५२
२६.	कौड़ी हो जाना	पिय बिनु भइ कौड़ी बर बारी	२६८
२७	हाथ मसलकर रह जाना	काहु छुवै न पाये, गये मरोरत हाँथ	४६
२८.	मार्ग में सोना उछालना	मारग मानुष सोन उछारा	६

क्रम सं०	लोक-प्रचलित रूप	काव्य-गृहीत रूप	पृष्ठ संख्या
२९.	परीनाथ न छूना	परी नाथ कोइ छुवै न पारा	६
३०.	दूध का दूध पानी का पानी	दूध पानि सब करै निनारा	६
३१.	बराबरी न कर सकना	दारिउँ सरि जो न कै सका	४४

(इन लोकोक्तियों और मुहावरों के संग्रह में पण्डित रामदहिन मिश्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी मुहावरे' नामक पुस्तक एवं 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ' में संकलित व्रज की ग्राम्य लोकोक्तियों की सहायता ली गयी है।)

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	संस्करण
आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतें	राहुल जी	१९५१
कबीर ग्रन्थावली	बा० श्यामसुन्दर दास	चतुर्थ
कालिदास ग्रन्थावली	सं० पं० सीताराम चतुर्वेदी	प्रथम
चन्दबरदाई और उनका काव्य	डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी	प्रथम
जायसी ग्रन्थावली	पं० रामचन्द्र शुक्ल	पंचम
जायसी ग्रन्थावली	डा० माताप्रसाद गुप्त	प्रथम
ढोला-मारू-रा-दूहा	ना० प्र० स०, काशी	प्रथमावृत्ति
तसव्वुफ	पं० चन्द्रबली पाण्डेय	प्रथम
नाथ सम्प्रदाय	पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी	१९५०
पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ	व्रज साहित्य मंडल	
पदुमावती	ग्रियर्सन–द्विवेदी	प्रथम
पद्मावत भाष्य	डा० मुंशीराम शर्मा	प्रथम

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	संस्करण
प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद	पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी	१९५२
पृथ्वीराज चरित्र	डा० रामनारायण	सं० १८२१
पृथ्वीराज रासो (संक्षिप्त)	पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी—श्री नामवर सिंह	१९५२
प्रकृति और हिन्दी काव्य (मध्य युग)	डा० रघुवंश	प्रथम
बाजत आवे ढोल	श्री देवेन्द्र सत्यार्थी	प्रथम
ब्रजलोक-संस्कृति	डा० सत्येन्द्र	प्रथम
ब्रजलोक-साहित्य का अध्ययन	डा० सत्येन्द्र	प्रथम
मध्यकालीन धर्म साधना	पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी	प्रथम
मध्यकालीन भारत	डा० परमात्मा शरण	१९३५
मध्यकालीन भारतीय संस्कृति	श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा	१९२७-२८
मलिक मुहम्मद जायसी (१)	डा० कमल कुलश्रेष्ठ	१९६७
रामचरित मानस	गो० तुलसीदास	
लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या	श्रीकृष्ण दास	प्रथम
विद्यापति पदावली	श्री बनारसी	द्वितीय
सुहाग-गीत	सुश्री विद्यावती कोकिल	१९५३
हिन्दी साहित्य का इतिहास	पं० रामचन्द्र शुक्ल	सं० २००१
हिन्दी साहित्य	पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी	१९५२
हिन्दी साहित्य की भूमिका	पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी	१९४८
हिन्दी साहित्य का आदि०	पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी	१९५२
हिन्दी भाषा का इतिहास	डा० धीरेन्द्र वर्मा	१९४९

ग्रन्थ	ग्रन्थकार	संस्करण
हिन्दी साहित्य का अलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा	द्वितीय
हिन्दी के कवि और काव्य (३)	पं० गणेशप्रसाद द्विवेदी	प्रथम
हिन्दी कवि चर्चा	पं० चन्द्रबली पाण्डेय	प्रथम
हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य	डा० कुलश्रेष्ठ	१९५३
हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास	'हरिऔध' जी	प्रथम
हिन्दी काव्यधारा में प्रेम प्रवाह	पं० परशुराम चतुर्वेदी	प्रथम
हिन्दी कविता की पृष्ठ भूमि	डा० भटनागर	प्रथम
हिन्दी मुहावरे	पं० रामदहिन मिश्र	
हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण	डा० किरणकुमारी गुप्ता	प्रथम
हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग	नामवर सिंह	प्रथम
हिन्दी लोकगीत	रामकिशोरी श्रीवास्तव	१९५६

पत्रिकायें

हिन्दी

१. आलोचना राजकमल प्रकाशन
२. नागरी प्रचारिणी (सभा) पत्रिका काशी
३. जनपद—काशी
४. आजकल—दिल्ली
५. कल्पना—हैदराबाद

अंग्रेजी पत्रिकायें

1. Journal of The Royal Society of Bengal—Calcutta.
2. Modern Review—Calcutta.

ENGLISH BOOKS

A History of Sanskrit Literature . A. B. Kieth, 1928
A Grammar of the Hindi Language: S. H. Kellogg, Ed. II
American Folklore : (Pocket Book)
A Harvest of World Folk-tales M. Rugoff, 1949
Behar Peasant Life : G. Grierson—1926
Chamber's Enoyclopedia, Vol X
Classical Sanskrit Literature : A. B. Kieth, 1923.
Dictionary of World Literature
Encyclopedia Britanica, Vol. X
Evolution of Awadhi : Dr. Babu Ram Saksena, Ed. I.
Folk-Element in Hindu Culture : B. K. Sarkar, Ed. I
Folk Tales of Bengal : Lal Behari De Ed. I
Hindi Folk Songs: A. G. Shirreff, 1944.
Hindu Manners, Customs and Ceremonies : A. J. A. Dubois, Ed. III.
India . Alberuni, Part II : Ed. by Dr. Sachau.
Myths of Middle India : V. Elwin. 1949
Ocean of the Story : Penzar (New Edition
Padmavati A. G. Shirreff, 1944.
Peasant Life of Behar : G. Grierson, 1926.
Poetic Origins and the Ballads : L. Pound, 1921
Religion and Folk-Lore of Northern India, : W. Crook, 1926.
The position of Women in Hindu Civilization : Dr. Altekar, 1938
The Hand Book of Folk-lore : C. S. Burne—1914
The Worship of Nature : J. G. Frazer Vol I.